उर्दू के सबसे चर्चित, विवादित व प्रतिबंधित किताब

अंगारे

हिंदी अनुवाद

फ़रीद अहमद

अल्ट्रा क्रिएशन्स

अंगारे (हिंदी अनुवाद)

संस्करण : प्रथम 2022

ISBN 978-93-91959-03-6

मूल्य ₹299

पृष्ठ: 158

मुद्रण: Pothi.com, Mudranik Technologies Pvt Ltd, Ground Floor, No. 46, 11th Cross Indiranagar 1st Stage Bangalore - 560038

Published by
Ultra Creations Publication
Qidwai Nagar, Haldwani (Nainital)
Uttrakhand, India PIN-263139
www.ultracreations.in
eMail: ultracreations.pub@gmail.com

ANGARE: TRANSLATED BY FAREED AHMAD

ISBN 978-93-91959-03-6

- कुछ शब्द 01
- अंगारे और आबले................फ़रीद अहमद.............04
- अंगारे के लेखक...............संक्षिप्त परिचय...............11
- नींद नहीं आती.....................सज्जाद ज़हीर 26
- जन्नत की बशारत................सज्जाद ज़हीर.............44
- गर्मियों की एक रात............सज्जाद ज़हीर..............56
- दुलारी................................सज्जाद ज़हीर 68
- फ़िर यह हंगामा..................सज्जाद ज़हीर..............77
- बादल नहीं आते...................अहमद अली...............91
- महावटों की एक रात............अहमद अली............102
- दिल्ली की सैर........................रशीद जहाँ.............115
- पर्दे के पीछे (ड्रामा).................रशीद जहाँ..............119
- जवाँ-मर्दी........................... महमूदुज़्ज़फ़र............143

कुछ शब्द ....

उर्दू अदब की सबसे चर्चित व विवादित किताब "अंगारे" जो कि 1932 ई० में लखनऊ से प्रकाशित हुई। प्रकाशित होते ही इस किताब पर आपत्तियां लगने लगीं। समाचारपत्रों में इस किताब के विरोध में लेख तथा सम्पादकीय छपने लगे। जगह जगह विरोध प्रदर्शन तथा आन्दोलन होने लगे। कई जगह "अंगारे" की प्रतियाँ जलाई गईं। अदब की दुनिया में हलचल मच गई। आखिर ऐसा क्या था इस किताब में जिसके चलते इतना विरोध हुआ ?

"अंगारे" चार लेखकों की कुल 10 रचनाओं (9 लघु कहानियाँ तथा 1 ड्रामा) का संग्रह है। जिसमें समाज में फैली रूढ़िवादिता, महिलाओं का निम्न सामाजिक स्तर तथा धर्म के नाम पर किये जा रहे कृत्यों को बेनिक़ाब किया गया। विरोध का एक मुख्य कारण यह था कि लेखकों ने कहानियों के किरदारों की भाषा व शब्दों के चुनाव को लेकर सहिष्णुता नहीं बरती जिससे धार्मिक भावनाएं आहत हुईं।

आख़िरकार भारी विरोध के चलते ब्रिटिश सरकार द्वारा 15 मार्च 1933 ई० को “अंगारे” पर प्रतिबंध लगा दिया और “अंगारे” की प्रतियाँ जाला दी गईं।

लगभग 84 सालों तक “अंगारे” हिंदी पाठकों से दूर रही हालाँकि 1995 ई० में “अंगारे” का पुनः प्रकाशन किया गया जोकि ‘उर्दू’ भाषा में था। 2014 ई० में “अंगारे” का उर्दू से अंग्रेजी अनुवाद दो बार किया गया जिसमें प्रथम अनुवादक के रूप में ‘विभा एस० चौहान’ व ‘डॉ० खालिद अल्वी’ हैं। जिसको ‘रूपा पब्लिकेशन, नई दिल्ली’ द्वारा प्रकाशित किया गया। दूसरा अंग्रेजी अनुवाद ‘टेक्सास विश्वविद्यालय’ की अकादमिक ‘स्नेहल शिवांगी’ ने किया, जिसको ‘पेंगुइन प्रकाशक द्वारा प्रकाशित किया गया।

हिंदी पाठकों तक “अंगारे” की पहुँच बनाने का श्रेय ‘शकील सिद्दीकी’ साहब को जाता है। जिन्होंने “अंगारे” का प्रथम हिंदी अनुवाद वर्ष 2016 में किया, जिसको ‘वाणी प्रकाशन’ द्वारा प्रकाशित किया गया। मेरे द्वारा “अंगारे” का दूसरा हिंदी अनुवाद किया जा रहा है जिसमें अरबी, फ़ारसी के कठिन शब्दों, वाक्यों तथा मुहावरों की सरल संक्षिप्त व्याख्या फुटनोट में दी गई है। अनुवाद में यह कोशिश की गई है कि उस समय के रोज़मर्रा और आम बोल-चाल में बोले जाने वाले शब्दों, वाक्यों जिसमें अरबी,

फ़ारसी भाषा का रंग अत्याधिक मिलता है, का सरल शब्दों में प्रयोग कर 'हिन्दुस्तानी भाषा' में अनुवाद किया जाए, न कि हिंदी अनुवाद के नाम पर हिंदी, संस्कृत के कठिन शब्दों का प्रयोग कर अनुवाद को कठिन बनाया जाए। ताकि आम हिंदी पाठक को कहानियों के भाव व मर्म को समझने में किसी भी प्रकार की कोई भाषा संबंधी समस्या न रहे।

इस पुस्तक में "अंगारे" की कहानियों के हिंदी अनुवाद के अलावा "अंगारे" पर लगी आपत्तियों व समाचार पत्रों द्वारा "अंगारे" के विरोध में लिखे लेखों तथा प्रतिबंध के सम्बन्ध में की गईं कार्यवाहियों व "अंगारे" के सभी लेखकों का जीवन परिचय संक्षिप्त रूप से पेश किया गया है। ताकि पाठक "अंगारे" के समस्त पहलु से अवगत हो सकें।

आशा है कि हिंदी पाठकों के लिए "अंगारे" का यह हिंदी अनुवाद सरल, सुगम व लाभकारी रहेगा।

धन्यवाद

हल्द्वानी (नैनीताल) — अनुवादक

अगस्त 15/2022 — फ़रीद अहमद

अंगारे और आबले - फ़रीद अहमद

दिसंबर 1932 ई० लखनऊ की 'निज़ामी प्रेस' से "अंगारे" शीर्षक से एक किताब प्रकाशित हुई। उर्दू में अपने तर्ज़ की यह एक अलग ही किताब थी। जिसमें 9 कहानियाँ और एक ड्रामा शामिल है। यह कहानी और ड्रामा लिखने वाले लेखकों में 3 मर्द और 1 औरत जिनके नाम सज्जाद ज़हीर, अहमद अली, रशीद जहाँ और महमूदुज़्ज़फ़र हैं। "अंगारे" ने समाज के कई तबकों पर आबले का काम किया। जिसकी जलन से ब्रिटिश भारत में कोहराम सा मच गया। जगह जगह विरोध होने लगे। अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं में इस किताब की निंदा करते हुए लेख छपने लगे। मुस्लिम धर्मगुरुओं द्वारा फ़तवे दिए जाने लगे।

“अंगारे” के विरोध में सबसे बढ़ चढ़ कर जिस अखबार ने हिस्सा लिया वो लखनऊ से प्रकाशित होने वाला साप्ताहिक “सरफ़राज़” अखबार था। जिसने अपने कई अंकों में “अंगारे” के विरोध में कई लेखों को प्रकाशित किया। सबसे पहले 25 जनवरी 1933 ई० के अंक में “सरफ़राज़” ने “अंगारे” को दुनिया के लिए फ़ितना बताते हुए एक लेख छापा जिसका शीर्षक “दुनिया ए मज़हब में एक फ़ितना” रखा। 01 फ़रवरी 1933 ई० के अंक में एक और लेख प्रकाशित हुआ जिसमें “अंगारे” की कहानियों को नैतिक मूल्यों का विरोधी बताया गया। 13 फ़रवरी 1933 ई० के अंक में मौलवी मोहम्मद अली कानपुरी का एक लेख छपा जिसमें “अंगारे” की पुरज़ोर मुखालफ़त की गई। 21 फ़रवरी 1933 ई० के अंक में “राजपाल की रूह” शीर्षक से एक लेख अब्दुल हमीद खाँ का सामने आया जिसमें अब्दुल हमीद खाँ ने सज्जाद ज़हीर का नाम लिए बिना ही सज्जाद ज़हीर को ‘राजपाल’ व 1920 ई० में लाहौर से प्रकाशित हुई विवादित व प्रतिबंधित किताब ‘रंगीला रसूल’ के लेखक की आत्मा बताया।

मौलाना अब्दुल माजिद दरयाबादी के साप्ताहिक अखबार “सच” के 24 फ़रवरी 1933 ई० के अंक में “अंगारे” के विरोध में “एक शर्मनाक किताब” शीर्षक से लेख प्रकाशित किया

गया। जिसमें "अंगारे" तथा अंगारे के लेखकों की जमकर निंदा की गई। तथा किताब को अश्लील व धार्मिक भावनाओं को आहत करने वाला बताया गया। 27 मार्च 1933 ई० के अंक में "अंगारे" के विरोध में फिर एक विस्तृत लेख "गंदगी का एक कद्रदान" शीर्षक से प्रकाशित किया गया जिसमें "अंगारे" में शामिल 'अहमद अली' की कहानी 'बादल नहीं आते' पर निंदा व भत्सर्ना की तथा 'रशीद जहाँ' का ड्रामा 'परदे के पीछे' के सम्बन्ध में लिखा -

> "ड्रामे में एक पर्दानशीं औरत के दिल और उसके घर का हाल सुनाया गया है, बीवियों को अपने शौहर से तरह तरह की शिकायतें होती हैं, लेकिन हमें इस ड्रामें में बताया गया है कि माँ को उसके बच्चे भी दूभर हो जाते हैं।"[1]

साप्ताहिक अखबार 'सच' ने अपने 24 मार्च 1933 ई० के अंक में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के पुस्तक विक्रेता पर निशाने लगाते हुए "मुस्लिम यूनिवर्सिटी का यह उस्ताद कौन है ?" शीर्षक से एक लेख छापा। जिसके बाद अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में "अंगारे" की बिक्री पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

"अंगारे" के विरुद्ध साप्ताहिक 'सरफ़राज़' व 'सच' के

---

[1] साप्ताहिक 'सच', 27 मार्च 1933,लखनऊ

अतिरिक्त अन्य अखबारों जिसमें लखनऊ से प्रकाशित होने वाले अखबार ‘हमदम’, ‘ख़िलाफ़त’, ‘नवेद’, ‘हक़ीक़त’, हैदराबाद से प्रकाशित होने वाला अखबार ‘रहबर ए दक्किन’, बाराबंकी से ‘रास्ती’ तथा ‘शीराज़ा’, लाहौर से ‘आज़ाद’ ने भी “अंगारे” के विरोध में लिखा व लेख छापे। लखनऊ से प्रकाशित होने वाले अखबार ‘हकीकत’ ने “अंगारे” के विरोध में लिखा लेकिन 22 अप्रैल 1933 ई० के अंक में “अंगारे” के पक्ष में एक लेख प्रकाशित किया जिसमें अपील की गई कि “अंगारे’ को केवल साहित्यिक रूप से देखा व परखा जाए तथा धर्म को साहित्य से दूर रखना चाहिए। लेकिन इस अपील का कोई ख़ास असर नहीं हुआ। इलाहबाद से प्रकाशित होने वाला अंग्रेजी अखबार “स्टार” ने भी “अंगारे” के विरोध में लेख छापे।लेकिन अन्य अंग्रेजी अख़बारों में “अंगारे” के विरोध में कोई लेख या ख़बर नहीं मिलती है।

ब्रिटिश भारत के अखबारों व पत्र-पत्रिकाओं ने जो “अंगारे” के विरोध में निन्दात्मक रूप से लेख व सम्पादकीय लिखे उसके प्रभाव में लखनऊ तथा अलीगढ़ में कई विरोध प्रदर्शन तथा आन्दोलन हुए। “अंगारे” की प्रतियाँ जलाई गईं और धर्म गुरुओं व धार्मिक संगठनों द्वारा ब्रिटिश सरकार पर दबाव बनाया गया कि “अंगारे” पर प्रतिबंध लगाया जाए।भारी विरोध को देखते हुए

'अखिल भारतीय शिया सम्मलेन' लखनऊ द्वारा "अंगारे" के विरोध में एक प्रस्ताव पारित किया गया। जिसको 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने 'उर्दू पैम्फलेट डिनाउंसः शिया ग्रेवली अपसेट' शीर्षक से प्रकाशित किया।

27 फ़रवरी 1933 ई० को हाफ़िज़ हिदायत हुसैन बार एक्ट लॉ ने कॉन्सिल में "अंगारे" को प्रतिबंध किये जाने की सिफारिश की। जिसके उत्तर में नवाब सर अहमद सईद खाँ गृह सदस्य ने आश्वासन दिया कि सरकार शीघ्र ही "अंगारे" के ख़िलाफ़ कार्यवाही करेगी। इसी दिन सिटी मजिस्ट्रेट लखनऊ ने "अंगारे" के प्रकाशक व 'निज़ामी प्रेस' के स्वामी अली जव्वाद को तलब किया। सिटी मजिस्ट्रेट को दिए गए बयान में अली जव्वाद ने अपनी गलती को मानते हुए लोगों की धार्मिक भावनाओं के आहत होने के संबंध में माफ़ी मांगी और "अंगारे" की समस्त प्रतियाँ सिटी मजिस्ट्रेट कार्यालय में जमा करा दीं।

'निज़ामी प्रेस' लखनऊ के स्वामी अली जव्वाद के अलावा प्रतिबंध से पहले या बाद में "अंगारे" के चारो लेखकों में से किसी भी लेखक ने माफ़ी नहीं माँगी

15 मार्च 1933 ई० को आखिर वो दिन आ ही गया जब

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 295A के तहत ब्रिटिश संयुक्य प्रांत सरकार ने "अंगारे" पर प्रतिबंध लगा दिया। "अंगारे' की 5 प्रतियाँ छोड़ समस्त प्रतियाँ जला दी गईं और इन प्रतियों को ब्रिटिश पुस्तकालय व इंडियन ऑफिस कलेक्शन में भेज दिया गया।

प्रतिबंध के लगभग 54 साल बाद 1987 ई० में "अंगारे" की माइक्रोफिल्म लंदन के ब्रिटिश संग्राहलय में संरक्षित पायी गयी, जिसको दिल्ली विश्वविद्यालय के तत्कालीन उर्दू विभाग अध्यक्ष प्रो० क़मर रईस साहब के द्वारा भारत लाया गया और डॉ० खालिद अल्वी द्वारा संपादित किया गया। वर्ष 1995 ई० में एजुकेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली द्वारा "अंगारे" का पुनः प्रकाशन उर्दू भाषा में किया गया।

आज से 90 साल पहले तो "अंगारे" ने उर्दू साहित्य जगत तथा मुस्लिम समाज में "आबले" का काम किया था। अब जब कि 90 साल बाद "अंगारे" का सरल हिंदी अनुवाद हिंदी, उर्दू साहित्य जगत तथा मुस्लिम समाज के सामने है तो क्या आज भी इस आला तालीम व तरक्कीयाफ्ता दौर में भी "अंगारे" का विरोध होगा ? क्या आज भी "अंगारे" से "आबले" तक की राह बनेगी...?

अंगारे के लेखक संक्षिप्त परिचय

सज्जाद ज़हीर

5 नवंबर 1905 ई० को लखनऊ के मशहूर सामाजिक कार्यकर्त्ता और एक कामयाब वकील सर वज़ीर हसन के घर एक बेटे ने जन्म लिया। जिसका नाम सज्जाद ज़हीर रखा गया। सज्जाद ज़हीर ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा जुबली हाईस्कूल लखनऊ हासिल की और यहीं से 1921 ई० में हाईस्कूल उत्तीर्ण किया। इसके बाद क्रिश्चन कॉलेज में प्रवेश लिया। यहाँ उनके विषय इतिहास, अंग्रेजी व फ़ारसी रहे। उन दिनों वह श्री मिश्रा और अन्य राष्ट्रवादी व्यक्तियों से बहुत प्रभावित थे। वो खद्दर पहनते थे और मीट मांस के साथ साथ पलंग पर सोना भी छोड़ दिया था। उन दिनों लखनऊ में सर वज़ीर हसन के छोटे बेटे की वतनपरस्ती और सादा जीवन के चर्चे आम थे।

1923-24 ई० में सज्जाद ज़हीर ने अंग्रेजी और फ़्रांसिसी साहित्य के अध्ययन पर तवज्जो की। 'अनातोल फ्रांस' (Anatole France) और बर्ट्रेंड रसेल (Bertrand Russell) उनके प्रिय साहित्यकार बन गए। उन्ही दिनों सज्जाद ज़हीर ने मार्क्सवाद के अध्ययन की तरफ नज़रें कीं। 1926 ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त कर 1927 ई० में उच्च शिक्षा हेतु लंदन चले गए।

ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय (University of Oxford) में सज्जाद ज़हीर ने अर्थशास्त्र व अधुनिक इतिहास विषयों का चुनाव किया। ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में कुछ ही समय हुआ था कि क्षय रोग से संक्रमित हो गए। मजबूरन स्विट्जरलैंड के सेनेटोरियम में जाना पड़ा। सेनेटोरियम के एक साल के समय को सज्जाद ज़हीर ने फ़्रांसिसी भाषा व साहित्य के अध्ययन में लगा दिया। रूस क्रांति और साम्यवाद पर उन्होंने कई किताबों का अध्ययन किया। पहली रूसी फिल्म भी उनको यहीं देखने को मिली।

1928 ई० में जब सज्जाद ज़हीर ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय वापस लोटे तो मानसिक रूप से कम्युनिस्ट हो चुके थे। वह लंदन की कांग्रेस पार्टी से जुड़ गए जिसमें मुख्य रूप से डॉ०

अशरफ अली, डॉ० जैनुल आबिदीन और महमूदुज़्ज़फ़र थे।

1929 ई० में साइमन कमीशन के विरोध में जुलूस निकालने के जुर्म में पुलिस की लाठियां खाई और 1930 ई० में अपने कुछ साथियों की मदद से लंदन से एक अखबार "भारत" प्रकाशित किया। 1932 ई० में ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त करने के बाद डेनमार्क, जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली का सफ़र करते हुए भारत वापस आ गए और लखनऊ से "अंगारे" का प्रकाशन किया जिसकी पाँच कहानियाँ उन्होंने स्विट्जरलैंड प्रवास के समय लिखी थीं।

"अंगारे" के प्रकाशन के कुछ समय बाद सज्जाद ज़हीर अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए वापस लंदन चले गए। ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय से वकालत की डिग्री लेने के बाद 1935 ई० वापस भारत आगए और अंजुमन तरक़्क़ी पसंद मुसन्निफ़ीन (प्रगतिशील लेखक संघ) की आधारशीला रखी जिसका पहला अधिवेशन लखनऊ 1936 ई० में हुआ, जिसकी अध्यक्षता मुंशी प्रेमचंद ने की। 1936 ई० में ही सज्जाद ज़हीर को कांग्रेस की केन्द्रीय कार्यकारिणी में शामिल किया गया तथा उत्तर प्रदेश कम्युनिस्ट पार्टी ने प्रदेश सचिव बनाया। 1939 ई० को दिल्ली कम्युनिस्ट पार्टी का इंचार्ज नियुक्त किया गया। इसी दौरान उर्दू की विख्यात कहानीकार

रज़िया सज्जाद ज़हीर से शादी की। दोनों ने साथ मिलकर कम्युनिस्ट पार्टी व प्रगतिशील लेखक संघ में सेवाएँ दीं। 1940 ई० द्वितीय विश्वयुद्ध के समय विरोध के चलते आपको गिरफ़्तार कर लिया गया और लखनऊ सेंट्रल जेल में दो साल क़ैद रहे। जेल से रिहाई के बाद 1942 ई० में पार्टी के अखबार "क़ौमी जंग" के सिलसिले में मुम्बई गए तथा 1949 ई० में पाकिस्तान जाकर कम्युनिस्ट पार्टी की बाग़दौड़ अपने हाथ में ली। रावलपिंडी साजिश के तहत चार साल क़ैद की सज़ा सुनाई गई। रिहाई के बाद 1956 ई० में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के 'कल्चर सेल' का इंचार्ज बनाया गया। 1971 ई० में वियतनाम तथा अफ़्रीकी देशों का दौरा किया।

13 दिसंबर 1973 ई० को सोवियत रूस में आपका देहांत हो गया। पार्थिव शरीर दिल्ली लाया गया और जामिया मिल्लिया के कब्रिस्तान में सज्जाद ज़हीर को सुपुर्द ए खाक़ किया गया।

सज्जाद ज़हीर ने कई राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय अधिवेशनों, सम्मेलनों में भाग लिया व प्रतिनिधित्व किया जिसमें मुख्यतः 1935 ई० में world congress of the writers for the defence of culture. 1936 ई० से लेकर 1966 ई० तक अंजुमन के अधिवेशनों में भाग लिया। 1970 ई० में अफ़्रीकी-एशियाई राइटर

कांफ्रेंस में मेज़बानी की तथा 1972 ई० में अफ्रीकी-एशियाई राइटर की पांचवी कांफ्रेंस, सोवियत रूस में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

सज्जाद ज़हीर ने अलग अलग विधाओं में लेखन किया आपकी रचनाओं में “अंगारे” (कहानी संग्रह), “लंदन की एक रात”(नॉवल), रोशनाई (कहानी संग्रह), “बीमार” (ड्रामा), “नुकूश ए ज़िन्दां” (पत्र), “मेरी सुनो” (ख़लील जिब्रान की किताब “The Profhet” का उर्दू अनुवाद), “पिघला नीलम” (शायरी) “ज़िक्र ए हाफ़िज़” (आलोचना), “उर्दू का हाल और मुस्तकबल” तथा “उर्दू हिंदी हिन्दुस्तानी” आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।

पत्रकार की हैसियत से सज्जाद ज़हीर अखबार “भारत” (लंदन-1930 ई०), “चिंगारी” (सहारनपुर-1931 ई०), “क़ौमी जंग” (मुंबई-1942 ई०), “अवामी दौर” (दिल्ली-1949 ई०), “हयात” (दिल्ली-1963 ई०) सहित कई पत्र पत्रिकाओं से जुड़े रहे।

सज्जाद ज़हीर को कम्युनिस्ट, क्रांतिकारी, कहानीकार व पत्रकार की हैसियत से अधिक जाना जाता है। जबकि सज्जाद ज़हीर एक बेहतरीन शायर की हैसियत भी रखते हैं।

आपके नज़्म संग्रह “पिघलता नीलम” से एक नज़्मः-

“ आओ मेरे पास आओ नज़दीक

यहाँ से देखें

इस खिड़की से बाहर

नीचे इक दरिया बहता है

धुँदली धुँदली हिलती तस्वीरों का

ख़ामोशी से बोझल

ज़ख़्मी सायों में

तीर छुपाए थरथराते जलते

किनारों के पहलू में

बे-कल दुखी

उसे भी नींद नहीं आती ”

अहमद अली

अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक आन्दोलन के संस्थापक सदस्य, उर्दू व अंग्रेजी साहित्य के माहिर, कवि, उपान्यासकार, कहानीकार, अनुवादक, आलोचक, राजनयिक व विद्वान अहमद अली का जन्म 01 जुलाई 1910 ई० को दिल्ली में हुआ। प्रारम्भक शिक्षा दिल्ली और उच्च शिक्षा लखनऊ तथा इलाहबाद विश्वविद्यालय से प्रात की।

1946 ई० तक अहमद अली भारत के लखनऊ तथा इलाहबाद विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्यों से जुड़े रहे। प्रेडेंसी कॉलेज कलकत्ता में अंग्रेजी के प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष रहे तथा बंगाल सीनियर एजुकेशन सर्विस में शामिल हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय आपको बीबीसी का प्रतिनिधि व निदेशक बनाया गया। ब्रिटिश कॉन्सिल की तरफ से आपको 'नानजिंग विश्वविद्यालय' चीन में ब्रिटिश काउंसिल के विजिटिंग प्रोफेसर नियुक्त किया गया।

भारत विभाजन के उपरान्त 1948 ई० को आपने भारत वापस आने की कोशिश की तो आपको भारत नहीं आने दिया गया। तत्कलीन चीन में भारत के राजदूत के०पी०एस० मेमन ने आपको भारत लोटने की अनुमति नहीं दी। और आप को पकिस्तान जाने पर मजबूर किया गया।

1948 ई० में अहमद अली पकिस्तान आए और आपको पाकिस्तानी सरकार के लिए विदेशी प्रचार निदेशक के रूप में नियुक्ति दी गई। 1950 ई० को तत्कलीन पाकिस्तानी प्रधानमंत्री लियाक़त अली खान द्वारा आपको पाकिस्तानी विदेश सेवा में

सम्मिलित कर 1951 ई० को चीन में पकिस्तान का राजदूत बनाया गया। एक राजदूत के तौर पर आपका कार्यकाल अत्यंत कुशल व औपचारिक राजनियक संबंधों के प्रति रहा। आपने मोरक्को में दूतावास स्थापित करने विशेष भूमिका निभाई।

14 जनवरी 1994 ई० को 73 वर्ष की आयु में करांची पाकिस्तान में देहांत हो गया।

अहमद अली एक कुशल राजनियक व सफल कूटनीतिज्ञ के साथ साथ कवि, अनुवादक, उर्दू व अंग्रेजी साहित्य के विद्वान् के रूप में जाने जाते हैं। आपने कई कहानियों, नॉवल की रचना की। आपकी पहली नज़्म "the lake of dream" जो कि अंग्रेजी भाषा में 1926 ई० में प्रकाशित हुई थी। 1932 ई० में आपने अंगारे के लिए कहानियाँ लिखीं। इसके अतिरिक्त "हमारी गली " (कहानी संग्रह- 1934 ई०), "क़ैद खाना" (कहानी संग्रह- 1944 ई०), "मौत से पहले" (कहानी संग्रह- 1954 ई०)। आपकी मुख्य रचनाएँ हैं। 1940 ई० में अंग्रेजी नॉवल "twilight in delhi" लिखा जिसमें दिल्ली की औरतों की सांस्कृतिक समस्यों का सजीव चित्रण किया है। इस नॉवल की मकबूलियत इस बात से लागी जा सकती है कि अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपान्यासकार एम्० फास्टर ने अपने नॉवल "A Passage of india" के प्रथम

संस्करण में “twilight in delhi” नॉवल की खूब प्रशंसा की है। अहमद अली की पत्नी बिलक़ीस बेगम ने नॉवल “twilight in delhi” का उर्दू अनुवाद “दिल्ली की एक शाम” के नाम से किया। 1956 ई० में अहमद अली ने भारत विभाजन के विषय पर दूसरा नॉवल “Ocean of Night” अंग्रेजी भाषा में लिखा। 1984 ई० में अहमद अली ने “अल-क़ुरआन” नाम से क़ुरआन का समकालीन अनुवाद किया जिसको ऑक्सफ़ोर्ड प्रेस द्वारा प्रकाशित किया गया। अरबी तथा उर्दू के अतिरिक्त आपने कई दूसरी भाषाओँ जिसमें चीनी व इंडोनशियाई भाषाओं में भी अनुवाद किया है।

1971 ई० में पाकिस्तान एकेडमी ऑफ लेटर्स के संस्थापक फेलो चुने गए। 1980 ई० में पाकिस्तान के राष्ट्रपति द्वारा सितारा-ए-इम्तियाज (उत्कृष्टता का सितारा) पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 1993 ई० में कराची विश्वविद्यालय द्वारा डॉक्टरेट की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। 14 जनवरी 2005 को, पाकिस्तान डाक विभाग ने अपनी 'मेन ऑफ लेटर्स' श्रृंखला के तहत अहमद अली के सम्मान में एक स्मारक डाक टिकट जारी किया।

रशीद जहाँ

पेशे से चिकित्सक, तबियत से प्रगतिशील लेखक, कथाकार व उपान्यासकार रशीद जहाँ का जन्म सर सैयद अहमद खाँ के सहयोगी शैख़ अब्दुल्लाह के घर 25 अगस्त 1905 ई० में अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा आपके पिता शैख़ अब्दुल्लाह के द्वारा बनाए गए महिला स्कूल अलीगढ़ में हुई। लखनऊ से आई० टी० कॉलेज में दो साल शिक्षा ग्रहण करने के बाद मेडिकल की पढ़ाई के लिए दिल्ली के लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज में प्रवेश लिया। 1934 ई० में मेडिकल की पढ़ाई पूर्ण कर

डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की। इसी वर्ष आपकी शादी लेखक व इस्लामिया कॉलेज अमृतसर के प्रिंसिपल महमूदुज़्ज़फ़र के साथ हुई।

अमृतसर प्रवास के समय आपकी मुलाक़ात 'फैज़ अहमद फैज़', 'तासीर' तथा अन्य विद्वानों से हुई और तरक्कीपसंद तहरीक (प्रगतिशील आन्दोलन) से जुड़ कर तहरीक की सरगर्मियों में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया।

1942 ई० में रशीद जहाँ मेडिकल प्रेक्टिस के लिए लखनऊ आ गईं और लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ के साथ मिलकर महिलाओं की समस्याओं व सामाजिक प्रस्थिति जैसे विषयों पर लिखती रहीं। 1949 ई० में रेलवे हड़ताल कराने के जुर्म में रशीद जहाँ को तीन माह की सज़ा हुई। जेल में ही आपका स्वास्थ्य खराब होने लगा। जांच उपरान्त पता चला की आपको केंसर है। 1950 ई० में केंसर का पहला ऑपरेशन हुआ लेकिन असफल रहा। 1952 ई० में सोवियत संघ की सरकारी पेशकश पर केंसर के इलाज़ के लिए मास्को गईं।

मास्कों में इलाज़ के दौरान लगभग तीन सप्ताह बाद 13 अगस्त 1952 ई० को रशीद जहाँ का देहांत हो गया।

रशीद जहाँ बहुत ज्यादा न लिख सकीं लेकिन जो कुछ भी लिखा वो अपने आप में बहुत कुछ है। आपने कई ड्रामें लिखें और उन्हें स्टेज भी किया। आपका कहानी संग्रह “औरत” 1937 ई० में लाहौर से प्रकाशित हुआ। दूसरा कहानी संग्रह “शोला ज्वाला” आपके देहांत के बाद 1968 ई० में प्रकाशित हुआ। पत्रिका “चिंगारी” से भी आप जुडी रहीं और महिलाओं को मानसिक ग़ुलामी से जगाने के लिए कई लेख लिखे।

महमूदुज़्ज़फ़र

महमूदुज़्ज़फ़र का जन्म 1903 ई० में रामपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ। प्राथमिक शिक्षा रामपुर से अंग्रेजी माध्यम से प्राप्त कर उच्च शिक्षा के लिए ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय गए। 1934 ई० में इस्लामिया कॉलेज अमृतसर में प्रिंसिपल के पद पर कार्यरत रहे। आपकी शादी उर्दू के प्रसिद्ध लेखिका रशीद जहाँ के साथ हुई। आपका देहांत 1956 ई० में हुआ।

महमूदुज़्ज़फ़र की जीवनी व साहित्यिक इतिहास का आभाव है। आपकी एक कहानी "जवा मर्दी" तथा एक यात्रावृत्तान्त "quest for Life" के अलावा कोई और रचना उपलब्ध नहीं है।

अंगारे

नींद नहीं आती - सज्जाद ज़हीर

घड़ घड़ घड़ घड़, टिक टिक, चट, टिक टिक टिक, चट चट चट ।

गुज़र गया ज़माना गले लगाए हुए... ए....... ए....... ख़ामोशी और अँधेरा, अँधेरा। आँख एक पल के बाद खुली, तकिया के ग़िलाफ़ की सफेदी अँधेरा, मगर बिलकुल अँधेरा नहीं........ फिर आँख बंद हो गई। मगर पूरा अँधेरा नहीं। आँख दबा कर बंद की, फिर भी रौशनी आ ही जाती है। पूरा अँधेरा क्यूँ नहीं होता ? क्यूँ नहीं ? क्यूँ नहीं ?

बड़ा मेरा दोस्त बनता है, जब मुलाक़ात हुई, आइए अकबर भाई, आप के देखने को आँखें तरस गईं, हैं.... हैं... हैं। कुछ ताज़ा कलाम सुनाइए...... लीजिए सिगरेट पी जिए । मगर समझता है शे`र ख़ूब समझता है।वह दूसरा उल्लू का पट्ठा तो

बिलकुल कम दिमाग़ है। अहा ! आज तो आप नई अचकन पहने हुए हैं, नई अचकन पहने हुए हैं........... तेरे बाप का क्या बिगड़ता है जो मैं नई अचकन पहने हुए हूँ। तू चाहता है कि बस एक तेरे ही पास नई अचकन हो। और शे`र समझना तो एक तरफ तू सही से पढ़ भी नहीं सकता। नाक में दम कर देता है। बेकार, बदतमीज़ कहीं का ! मगर बड़ा मेरा दोस्त बनता है। ऐसों की दोस्ती क्या! मेरी बातों से उसका दिल ज़रा बहल जाता है, बस यही दोस्ती है। मुफ्त का ख़ुशामदी मिला, चलो मज़े हैं...... ख़ुदा सब कुछ करे , ग़रीब न करे, दूसरों की ख़ुशामद करते करते ज़बान घिस जाती है, और वह है कि चार पैसे जो जेब में हम से ज्यादा हैं तो मिज़ाज ही नहीं मिलते। मैंने आखिर एक दिन कह दिया कि मैं नौकर हूँ, कोई आपका ग़ुलाम नहीं हूँ। तो आँखे निकाल कर लगा मुझे देखने। बस जी में आया कि कान पकड़ के एक चांटा रसीद करूँ, साले का दिमाग़ ठीक हो जाए।

टप टप खट, टप टप खट, टप टप खट, टप टप टप.........ट...........

इस वक़्त रात को यह आख़िर कौन जा रहा है ?

मौत है इसकी, और कहीं पानी बरसने लगे तो और मज़ा है। लखनऊ में जब मैं था, एक जलसे में मूसलाधार बारिश। अमीन उद्दौला पार्क तालाब मालूम होता था। मगर लोग हैं कि अपनी जगह

से टस से मस नहीं होते। और क्या है क्या जो यूँ सब जान पर झेलने को तैयार हैं। महात्मा गाँधी के आने का इंतिज़ार है। अब आए, तब आए, वह आए, आए, आए। वह मचान पर महात्मा जी पहुँचे.......... जय, जय, जय, ख़ामोशी।

मैं आप लोगों से यह कहना चाहता हूँ कि आप लोग विदेशी कपड़ा पहनना बिलकुल छोड़ दें। यह सेतानी गवर्नमेंट............

यहाँ पानी सर से होकर पैरों से परनालों की तरह बहने लगा। क़ुदरत मूत रही थी सेतानी गवर्नमेंट, शैतानी, गवर्नमेंट की नानी। इस गाँधी से शैतानी गवर्नमेंट की नानी मरती है। अहा...., शैतानी और नानी............... अकबर साहब, आप तो माशा अल्लाह शायर हैं, कोई देशभक्ति कविता लिखिए, यह गुल व बुलबुल की कहानियाँ कब तक, क़ौम की ऐसी की तेसी ! मेरे साथ क़ौम ने क्या अच्छा सुलूक किया है कि मैं गुल व बुलबुल छोड़ कर क़ौम के आगे थिरकूँ।

मगर मैं यह कहता हूँ कि मैंने आखिर किसी के साथ क्या बुरा व्यवहार किया है कि सारा ज़माना हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ा है। मेरे कपड़े मैले हैं......... इन से बदबू आती है....... बदबू

सही। मेरी टोपी देख कर कहने लगा कि तेल का धब्बा पड़ गया, नई टोपी क्यूँ नहीं खरीदते ? क्यूँ खरीदूँ नई टोपी, नई टोपी में क्या सुरख़ाब[1] का पर लगा है ?

अंगुश्त नुमा थी कज कुलाही जिन की

वो जूतियाँ चटखाते फ़िरते हैं आज

हम औज ए ताले लअल व गौहर को ....

वाह वा वाह ! क्या बेतुकापन है। जार्ज पंचम के ताज में हमारा हिन्दुस्तानी हीरा है। ले गए चुरा के अंग्रेज, रह गए न मुँह देखते ! उड़ गई सोने की चिड़िया रह गई दुम हाथ में। अब चाहते हैं कि दुम भी हाथ से निकल जाए, दुम न छूटने पाए। शाबाश है मेरे पहलवान ! लगाए जा ज़ोर ! दुम छूटी तो इज़्ज़त गई। क्या कहा ? इज़्ज़त ? इज़्ज़त ले के चाटना है। रोटी और नमक खाकर क्या बाँका जिस्म निकल आया है। फ़ाकह[2] हो तो फ़िर क्या कहना, अच्छा है। फिर तो बस इज़्ज़त है और इज़्ज़त के ऊपर ख़ुदावंद पाक।

ख़ुदावंद पाक, अल्लाह बारी त`आला, रब्बुल इज़्ज़त, परमेश्वर, परमात्मा लाख नाम ले जाओ। जल्दी, जल्दी, जल्दी और

---

[1] चकवा नामक पक्षी जिसके पर लाल व मोहक होते हैं।

[2] निराहार रहने की अवस्था, भूका प्यासा

जल्दी। क्या हुआ ? आत्म-शान्ति ? बस तुम्हारे लिए यही काफ़ी है। मगर मेरे पेट में तो आग है। दुआ करने से पेट नहीं भरता, पेट से हवा निकल जाती है भूक और ज्यादा मालूम होने लगती है।

भौं-भौं-भौं ....

अब इनका भौंकना शुरू हुआ तो रात भर जारी रहेगा। मच्छर अलग सता रहे हैं।तौबा है तौबा है ! एक जाली का पर्दा गर्मियों में बहुत आराम देता है। मच्छरों से छुटकारा मिलता है। मगर छुटकारा क्या ! दिन भर की मेहनत, चीख़-पुकार, कड़ी धूप में घंटों एक जगह से दूसरी जगह घूमते घूमते जान निकल जाती है । अम्मा कहा करती थीं, अकबर धूप में मत दौड़ो, आ, मेरे पास आ के लेट बच्चे ! लू लग जायेगी तुझे बच्चे। एक मुद्दत हो गई इसे भी। अब तो यह बातें ख़्वाब मालूम होती हैं। और मौलवी साहब हमेशा मेरी तारीफ़ करते थे, देखों नालायकों, अकबर को देखों इसे शोक़ है इल्म का। ख़्वाब वो सब बातें ख़्वाब मालूम होती हैं। मैं बस्ता तख़्ती लिए दौड़ता हुआ वापस आता था। अम्मा गोद में चिमटा लेती थी। मगर क्या आराम था ! उस वक़्त भी क्या आराम था ! यह सब चीजें मेरी क़िस्मत में ही नहीं। मगर जो मुसीबत मैं बर्दाश्त कर चुका शायद ही किसी को उठानी पड़ी हों। इसे याद करने से फ़ायदा ? ख़ैराती अस्पताल, नर्सें, डॉक्टर,सब नाक भों चढ़ाए और अम्मा का

यह हाल कि करवट लेना मुहाल। और उनके उगलदान में ख़ून के टुकड़े ही टुकड़े। मालूम होता था कि गोश्त के लोथड़े हैं............ और मैं सब को ख़त पे ख़त लिखता था। यही सब लोग जो रिश्तेदार बनते हैं ! आइए अकबर भाई आइए ! आपसे तो बरसों से मुलाक़ात नहीं हुई .... यही ! इन्हीं के माँ-बाप। क्या हो जाता थोड़ी और मदद कर देते। दुनिया भर की ख़ुराफात पर पानी की तरह पैसा बहाते हैं। किसी रिश्तेदार की मदद करते वक़्त मिल मिल कर पैसा देते हैं। और फिर एहसान जताना इतना कि ख़ुदा की पनाह ! एक दिन मैं कहीं बाहर गया हुआ था। इन्हीं साहबज़ादे की माता जी, अम्मा को देखने आईं। मैं जो पहुँचा तो इन्हें आए हुए कुछ मिनट ही हुए थे। चहरे से लग रहा था कि इन्हें डर है बैक्टीरिया इनके सीने के अंदर न घुस जाएँ। मगर बीमार को देखने आना फ़र्ज़ है, सवाब[1] का काम है।

यह सब तो सब, उल्टा मुझे डाँटना शुरू किया, कहाँ गए थे तुम अपनी अम्मा को छोड़कर। इनकी हालत ऐसी नहीं कि इन्हें इस तरह छोड़ा जाए .... मरीज़ में मुँह पर इस तरह की बातें। मैं ग़ुस्से से खोलने लगा, मगर मरता क्या न करता । अस्पताल का ख़र्च इन्हीं लोगों से लेना है । मेरी बीवी-बच्चे का ठिकाना इन्ही के

[1] पुण्य, नेकी, भलाई

यहाँ था.................. मेरी शादी का जिसने ज़ोरदार विरोध किया। लेकिन अम्मा बेचारी का सबसे बड़ा अरमान मेरी शादी थी। अकबर की दुल्हन ब्याह के लाऊँ, बस यह मेरी आखरी तमन्ना है। लोग कहते थे घर में खाने को नहीं, शादी किस बूते पर करोगी। ख़ुदा अन्नदाता है। जब मेरा रिश्ता पक्का हो गया, शादी की तारीख़ रख दी गई, शादी का दिन आ गया, तो वोही लोग जो विरोध करते थे शादी में जाने को तैयार होकर आ गए। सारी बची बचाई पूँजी अम्मा की मेहमानदारी और शादी के ज़रूरी ख़र्चों में ख़र्च हो गई।गैस की रौशनी, रेशमी अचकनें, पुलाओ, बाजा, गद्दी, हँसी-मज़ाक़, भीड़। खाने में कमी पड़ गई। बावर्ची ने चोरी की। बादशाह अली साहब का जूता चुर गया, ज़मीन आसमान एक कर दिय। अबे उल्लू के पट्ठे तूने जूता संभाल के क्यूँ नहीं रखा। जी हुज़ूर ! क़ुसूर मेरा नहीं........... मेहर[1] का झगड़ा होना शुरू हुआ। मुवज्जल[2] और ग़ैर-मुअज्जल[3] की बहस। मुँह दिखाई की रस्म। मज़ाक़, फूल, गाली-गलौच। शादी हो गई। अम्मा का अरमान पूरा हो गया।

मुहर्रम अली बेचारा चालीस बरस का हो गया उसकी

---

[1] मुस्लिम विवाह में वर द्वारा वधु को दी जाने वाली धनराशि।

[2] वह मेहर जो निकाह (विवाह) के समय तत्काल दिए जाएँ।

[3] वह मेहर जो निकाह (विवाह) के बाद कभी भी दिए जा सकते हैं।

शादी नहीं हुई। अकबर मियाँ शादी करवा दीजिए, शैतान रात को बहुत सताता है। शादी, ख़ुशी, कोई हमदर्द बात करने वाला, जिसे दिल की सारी बातें अकेले सुना दें।कोई औरत जिस से मोहब्बत कर सकें, दो घड़ी हँसें बोलें, छाती से लगाएँ, प्यार करें........... अरे मान भी जाओ मेरी जान ! मेरी प्यारी मेरी सब कुछ। ज़बान बेकार है। हाथ-पैर, सारा जिस्म, जिस्म का एक एक रोंगटा........ क्यूँ आज मुझसे ख़फ़ा हो ? बोलो ! अरे तुमने तो रोना शुरू कर दिया। ख़ुदा के वास्ते बताओ आख़िर बात क्या है ? देखो, मेरी तरफ देखो तो सही। वो आई हँसी, वो आई होंटों पर। बस अब हँस तो दो। क्या दो दिन की ज़िंदगी में ख़्वाह-मख़ाह का रोना धोना। ओफ़्फ़ो, यूँ नहीं यूँ। और और और ज़ोर से मेरे सीने से लिपट जाओ।

लखनऊ के कोठों की सैर मैंने भी की है। ऐसा ग़रीब नहीं हूँ कि दूर से ही रंडियों को देख कर सिसकियाँ लिया करूँ। आइए हुज़ूर अकबर साहब! यह क्या है जो मुद्दतों से हमारी तरफ रुख ही नहीं करते। इधर कोई नई चलती हुई ग़ज़ल कहीं हो तो मेहरबानी फ़रमाइए। गाकर सुनाऊँ। लीजिये पान खाइए। अरे और लो और लो, ज़रा दम तो लीजिए। अरे आज तो माफ़ फ़रमाइए, फ़िर कभी। मैं तो आपकी ख़ादिम हूँ ....रूपये की ग़ुलाम। समझती है मेरे पास पैसे नहीं। रूपये देख कर राज़ी हो गई। क्या

सुनाऊँ हुज़ूर .... तबले की थाप, सारंगी की आवाज़, गाना-बजाना। फिर तो मैं था और वो थी और सारी रात थी। नींद जिसे आई हो वो काफ़िर। यह रातों का जागना। दूसरे दिन दर्द ए सर, थकावट, उदासी।

अम्मा की बीमारी के ज़माने में उनकी पलंग की पट्टी से लगा घंटो बैठा रहता था और उनकी खाँसी। कभी-कभी तो मुझे ख़ुद डर मालूम होने लगता। मालूम होता था कि हर खाँसी के साथ अम्मा के सीने में एक गहरा ज़ख़्म और पड़ गया। हर साँस के साथ जैसे ज़ख्मों पर से किसी ने तेज़ छुरी की धार चला दी। और वो घर-घराहट जैसे किसी पुराने खण्डहर में लू चलने की आवाज़ होती है। डरावनी। मुझे अपनी माँ से डर मालूम होने लगता।

इस हड्डी चमड़े के ढाँचे में मेरी माँ कहाँ ! मैं उनके हाथ पर अपना हाथ रखता, धीरे से दबाता, उनकी आधी खुली आधी बंद आँखें मेरी तरफ मुड़तीं, उनकी नज़रे मुझ पर होती। उस वक़्त उस कमज़ोर, मुर्दा ज़िस्म भर में बस आँखें ज़िन्दा होतीं। उनके होंट हिलते। अम्मा ! अम्मा ! आप क्या कहना चाहती हैं, जी ! मैं अपना कान उनके लबों के पास ले जाता। वो अपना हाथ उठाकर मेरे सर पर रखतीं। मेरे बालों में उनकी उंगलियाँ मालूम होता था कि फंसी जाती हैं और वो छुड़ाना नहीं चाहतीं। बहुत देर हो गई, जाओ तुम

सो रहो.......... अम्मा यूँ ही पलंग पर लेती हैं। एक महीना, दो महीना, तीन महीना, एक साल, दो साल, सौ साल, हज़ार साल। मौत का फ़रिश्ता आया। बदतमीज़, बेहूदा कहीं का ! चल निकल यहाँ से, भाग, अभी भाग, वरना तेरी दुम काट लूँगा, डाँट पड़ेगी फिर बड़े मियाँ की ! हँसता है ? क्यूँ खड़ा है सामने दांत निकाले, तेरे फ़रिश्ते की ऐसी की तेसी। तेरे.........फ़रिश्ते........ की........

सारी दुनिया की ऐसी की तेसी, मियाँ ! अकबर तुम्हारी ऐसी की तेसी। ज़रा आपका रंग-ढंग देखें- फूँक दो तो उड़ जाए। बड़े शायर बने हैं। मुशायरों में तारीफ़ क्या हो जाती है कि समझते हैं .... क्या समझते हैं बेचारे समझेंगे क्या ! बीवी जान को समझने भी दें। सुबह से शाम तक शिकायत, रोना-धोना।कपड़ा फटा है।बच्चे की टोपी खो गई, नई ख़रीद के ले आओ.......... जैसे मेरी अपनी टोपी नई है......... कहाँ खो गई टोपी ? मैं क्या जानू कहाँ खो गई। इसके साथ कोने –कोने में थोड़ी भागती फिरती हूँ। मुझे काम करना होता है। बर्तन धोना, कपड़े सीना। सारे घर का काम मेरे ज़िम्मे है। मुझे किसी तरह शे`र कहने की फ़ुर्सत नहीं। सुन लो खूब अच्छी तरह से, मुझे काम करना होता है। ततैया का छत्ता छेड़ दिया अब जान बचानी मुश्किल हो गई। क्या कैंची की तरह ज़बान चलती है। माशा अल्लाह, नज़र न लगे .... अच्छी तरह जानते

हो मेरे पास पहनने को एक ठिकाने का कपड़ा नहीं है। लड़का तुम्हारा अलग नंगा घूमता है, मगर तुम हो कि मालूम होता है कि कोई वास्ता ही नहीं। जैसे किसी ग़रीब के बीवी-बच्चे हैं। हाय अल्लाह मेरी किस्मत फूट गई।

अब रोना शुरू होने वाला है। मियाँ अकबर बेहतर यही है कि तुम चुपके से खिसक लो। इसमें शर्माने की क्या बात। तुम्हारी मर्दानगी में कोई फ़र्क नहीं आता। खैरियत बस अब इस बात में है कि ख़ामोशी के साथ खिसक जाओ। हिजरत[1] करने से एक रसूल[2] की जान बची। मालूम नहीं ऐसे मौक़े पर रसूल बेचारे क्या करते थे, औरतों ने उनकी भी नाक में दम कर रखा था। तो फिर मेरा क्या आस्तित्व है। ऐ ख़ुदा आख़िर तूने औरत को क्यूँ पैदा की ? मुझ जैसा ग़रीब, कमज़ोर आदमी तेरी इस अमानत का भार अपने कांधों पर नहीं उठा सकता और क़यामत के दिन मैं जानता हूँ क्या होगा। यही औरतें वहाँ भी चीख़ पुकार मचाएंगी, नख़्रे करेंगी, आँखें मरेंगे कि अल्लाह मियाँ बेचारे खुद अपनी सफ़ेद दाढ़ी खुजाने लगेंगे। क़यामत का दिन आखिर कैसा होगा ? सवा नेज़े पर सूरज, मई जून की गर्मी उसके सामने कुछ नहीं होगी..... गर्मी की तकलीफ़, तौबा

---

[1] संकट के समय अपनी जन्म-भूमि छोड़कर कहीं दूसरी जगह चले जाना। पलायन

[2] ईशदूत,ईश्वर के प्रतिनिधि को इस्लाम धर्म में रसूल कहा जाता है। यहाँ रसूल से अभिप्राय मुहम्मद स० हैं।

तौबा अरे तौबा ! यह मच्छरों के मारे नाक में दम, नींद हराम हो गई।

पिन-पिन,चट । वो मारा। आखिर यह कमबख़्त ठीक कान के पास आ के क्यूँ भिन्न भिनाते हैं। ख़ुदा करे क़यामत के दिन मच्छर न हों। मगर क्या ठीक। कुछ ठीक नहीं। आखिर मच्छर और खटमल इस दुनिया में ख़ुदा ने किस उद्देश्य से पैदा किए ? मालूम नहीं पैगम्बरों[1] को खटमल और मच्छर काटते हैं या नहीं। कुछ ठीक नहीं, कुछ ठीक नहीं........ आप का नाम क्या है ? मेरा नाम है। कुछ ठीक नहीं। वाह वा वाह ! मस्लहत ए ख़ुदावंदी[2]। ख़ुदावंदी और रंडी और भिंडी। ग़लत ! भिन डी है। भिंडी थोड़ी है। मियाँ अकबर इतना भी अपनी हद से न बाहर निकल चलें और क्या है ? बहर-ए -रज़्ज़[3] में डाल के बहर-ए-रमल चले, बहर-ए-रमल चले[4], खूब ! वो तिफ्ल (बच्चा) क्या गिरेगा जो घुटनों के बल चले। अंगूर खट्टे ! आपको खटास पसंद है ? पसंद, पसंद से क्या होता है ? चीज हाथ भी तो लगे। मुझे घोड़ी गाड़ी पसंद है मगर पहुँचा नहीं कि वो दुलत्ती पड़ती

---

[1] ईशदूत, रसूल

[2] ख़ुदा (ईश्वर) की भलाई दृष्टि ।

[3] एक प्रकार का छंद,वज़न जिसके अनुसार ग़ज़ल लिखी जाती है।

[4] एक प्रकार का छंद,वज़न जिसके अनुसार ग़ज़ल लिखी जाती है।

है कि सर पाऊँ रख कर भागना पड़ता है और मुझे क्या पसंद है ? मेरी जान ! मगर तुम तो मेरी जान से ज्यादा प्यारी हो।

चलो हटो ! बस रहने भी दो, तुम्हारी मीठी- मीठी बातों का स्वाद मैं खूब चख चुकी हूँ.......... क्यूँ क्या हुआ क्या ......? हुआ क्या ? मुझसे यह बेशर्मी नहीं सही जाती। तुम जानते हो कि दिन भर नौकरानी की तरह से काम करती हूँ, बल्कि नौकरानी से भी बद्तर। जब से मैं इस घर में आई हूँ किसी कामवाली को एक महीने से ज़्यादा टिकते न देखा। मुझे साल भर से ज़्यादा हो गए और कभी ज़रा दम लेने की फ़ुर्सत मिली हो। अकबर की दुल्हन यह करो, अकबर की दुल्हन वो करो...... अरे अरे क्या, हुआ क्या, तुमने तो फिर रोना शुरू किया....... मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ, मुझे यहाँ से कहीं ओर ले जा के रखो...... मैं शरीफ़ज़ादी हूँ....... सब कुछ सह लिया अब मुझसे गाली न बर्दाश्त होगी। गाली ! गाली ! मालूम नहीं क्या गाली दी। मेरी बीवी पर गालियाँ पड़ने लगीं।

या अल्लाह ! या अल्लाह ! बेगम कमबख़्त का गला और मेरा हाथ। उसकी आँखें निकल पड़ीं, ज़बान बहार निकलने लगी। ख़स कम जहाँ पाक[1]....... ख़ुदा के लिए मुझे छोड़ दो ! गलती हुई,

---

[1] कहावत: बुरे इंसान की मृत्यु पर कही जाती है। चलो अच्छा हुआ, संसार पवित्र हुआ।

माफ़ करो, अकबर, मैंने तुम्हारे साथ एहसान भी किये हैं.... एहसान तो ज़रूर किये हैं। एहसानों का शुक्रिया अदा करता हूँ। मगर अब तुम्हारा वक़्त आ गया। क्या समझ के मेरी बीवी को गालियाँ दी थीं ? बस ख़त्म ! आख़री दुआ माँग लो ! गला घोटने से सर काटना बेहतर है। बालों को पकड़ कर कटा हुआ सर उठाना, ज़बान का एक तरफ को निकली पड़ रही है। खून टपक रहा है। आँखें घूर रही हैं...... या अल्लाह आखिर मुझे क्या हो गया ? ख़ून का समुंदर ! मैं ख़ून के समुंदर में डूबा जा रहा हूँ। चरों तरफ से लाल लाल गोले मेरी तरफ़ बढ़ते चले आ रहे हैं। वो आया ! वो आया ! एक, दो, तीन ! सब मेरे सर पर आकर फटें रोंगटे जल रहे हैं। दौड़ों ! अरे दौड़ों ! ख़ुदा के लिए दौड़ो ! मेरी मदद करो, मैं जला जा रहा हूँ। मेरे सर के बाल जलने लगे। पानी ! पानी ! कोई सुनता क्यूँ नहीं ? ख़ुदा के वास्ते मेरे सर पर पानी डालो ! क्या ? इन जलते हुए अंगारों पर से मुझे नंगे पैर चलना पड़ेगा ? क्या ? मेरी आँखों में दहकते हुए लोहे की सलाखें डाली जायेंगी ? क्या ? मुझे खोलता हुआ पानी पीने को मिलेगा ? क्या क्या क्या ? मुझे पीप खाना पड़ेगी ?

यह शोले मेरी तरफ़ क्यूँ बढ़ते चले आ रहे हैं ? यह शोले हैं या भाले हैं ? आग के भाले ! ज़ख़्म की भी तकलीफ़ और जलने की भी। यह किस के चीख़्ने की आवाज आई ? मैं तो सुन चुका हूँ

इस आवाज़ को। ऊ ऊ ऊ......... ऊऊऊऊ आवाज़ दूर होती जाती है। मेरे लड़के ने आख़िर क्या क़ुसूर किया है ? मेरे लड़के को किस जुर्म की सज़ा मिल रही है ? मेरा लड़का तो अभी चार बरस का है। इसे तो माफ़ कर देना चाहिए। मैं गुनाहगार हूँ ! मैं ख़तावार हूँ ! यह कौन आ रहा है मेरे सामने से ? अरे म`आज़ अल्लाह[1] ! सांप चिमटे हुए हैं उसकी गर्दन से। उसकी छाती को काट रहे हैं........ ऐ हुज़ूर ! आदाब अर्ज़ है ! ऐ हुज़ूर भूल गए हम ग़रीबों को ? मैं हूँ मुन्नी जान ! कोई ठुमरी[2], कोई दादरा[3], कोई ग़ज़ल। ऐ है आप तो जैसे डरे जाते हैं हुज़ूर ! यह साँप आपसे कुछ नहीं बोलेंगे। इनकी भी अनोखी मेहरबानी है। मैं जब यहाँ आई तो दरोग़ा साहब ने कहा, बी मुन्नी जान ! सरकार का हुक्म है पाँच बिच्छु तुम्हारी ख़िदमत के लिए हाज़िर किए जाएँ। मैं हुज़ूर सहम गई। बचपन से मुझे बिच्छु से नफरत थी। मैंने हुज़ूर के बहुत हाथ-पैर जोड़े, मगर दरोग़ा साहब ने कहा कि सरकार के हुक्म को पूरा करना उन पर फ़र्ज़ है। तब मैंने कहा कि अच्छा आप मुझे सरकार के दरबार में पहुँचा दें, मैं खुद उन से प्रार्थना करूँगी।

---

[1] एक अरबी वाक्य जिसका अर्थ है 'अल्लाह क्षमा करे'।

[2] एक प्रकार का छोटा सा गीत, स्त्री प्रेमालाप।

[3] एक प्रकार का गाना, ताल

दरोग़ा साहब बेचारे भले आदमी थे, अपने पास बुला कर बैठाया, मेरे गालों पर हाथ फेरे, आखिरकार राज़ी हो गए। पहले तो मुझे कई घंटे इंतिज़ार करना पड़ा। दरोग़ा साहब ने कहा इस वक़्त सरकार पैगम्बरों की कोंसिल कर रहे हैं। जब उससे फ़ुर्सत होगी तब मेरी पेशी होगी। मैंने जब यह सुना तो कोशिश की कि झाँक कर अपने पैगम्बर साहब का जलवा देख लूँ, मगर दरवाज़े के दरबान, मूंछ मुस्टंडे देव ने मुझे धक्का देकर अलग कर दया। ख़ैर हुज़ूर, आख़िरकार मेरी बारी आई। मेरा दिल धड़-धड़ कर रहा था कि देखो क्या होता है। सरकार के दरबार में दाख़िल होते ही मैं घुटनों के बल गिर पड़ी। मेरी अपनी ज़बान से कुछ बोला न जाता था, दरोग़ा साहब ने मेरा हाल बयान किया।

इतने में हुक्म हुआ, खड़ी हो। मैं हुज़ूर खड़ी हो गई। तो सरकार ख़ुद उठ कर मेरे पास तशरीफ़ लाए। बड़ी सी सफ़ेद दाढ़ी, गोरा चिट्टा रंग, और मेरी तरफ मुस्कुरा के देखा। फिर मेरा हाथ पकड़ कर बग़ल के कमरे में ले गए। मेरी हुज़ूर समझ में नहीं आता था कि आखिर मामला किया है.............. मगर हुज़ूर देखने ही में बुड्ढे मालूम होते हैं, ऐसे मर्द दुनिया में तो मैंने देखे नहीं और आपकी दुआ से हुज़ूर मेरे यहाँ बड़े बड़े रईस आते थे ! ख़ैर तो हुज़ूर बाद में सरकार ने फ़रमाया कि सज़ा तो मुझे ज़रूर मिलेगी, क्यूंकि उनका इंसाफ

तो सबके साथ बराबर है, मगर बिच्छुओं के बदले मुझे दो ऐसे साँप मिले जो बस मेरा सीना चाटा करते हैं। सच पूछिए हुज़ूर इसमें तकलीफ कुछ नहीं और मज़ा ही है................. मगर आप तो मुझसे डर जाते हैं। अकबर साहब ! ऐ हुज़ूर अकबर साहब......... कोई ठुमरी, कोई दादरा, कोई ग़ज़ल..........

या अल्लाह मुझे जहन्नुम की आग से बचा ! तू रहम करने वाला है। मैं तेरा एक छोटा सा गुनाहगार बंदा हूँ.......... मगर कुछ भी हो बे-इज़्ज़ती मुझसे बर्दाश्त न होगी। मेरी बीवी पर गालियाँ पड़ने लगी हैं। मगर मैं करूँ तो क्या करूँ ? भूका मरुँ ? हड्डियों का एक ढाँचा, उस पर एक खोपड़ी, खट खट करती सड़क पर चली जा रही है। अकबर साहब ! आपके ज़िस्म का गोश्त क्या हुआ ? आपकी चमड़ी किधर गई ? जी मैं भूका मर रहा हूँ, गोश्त अपना मैंने गधों को खिला दिया। चमड़ी के तबले बनवाकर बी मुन्नी जान को तोहफ़े दे दिए।

क्या ख़ूब सूझी ! आपको जलन हो रही हो तो बिस्मिल्लाह[1] मेरी पैरवी कीजिए। मै किसी की पैरवी नहीं करता ! मैं आज़ाद हूँ हवा की तरह से! आज़ादी की आजकल अच्छी हवा

---

[1] अरबी का वाक्य जिसका अर्थ है 'अल्लाह के नाम से आरम्भ'। किसी नेकी, भलाई या सही कार्य को आरम्भ या प्रारम्भ करते समय उच्चारण किया जाता है।

चली है। पेट में आंतें कुलबुला रही हैं और आप हैं कि आज़ादी के चक्कर में हैं।

मौत या आज़ादी ! न मुझे मौत पसंद है न आज़ादी। कोई मेरा पेट भर दे।

पिन, पिन पिन। चट, हट तेरे मच्छर की...... टन टन टन .. टन टन.....

जन्नत की बशारत - सज्जाद ज़हीर

लखनऊ, इस पतन के काल में भी इस्लामी शिक्षाओं का केंद्र है। कई अरबी मदरसे आजकल के फ़ितने फ़सादी ज़माने में सच्चाई की शमा रोशन किए हुए है। हिंदुस्तान के हर कोने से ईमान की गर्मी रखने वाले दिल यहाँ आकर दीन की शिक्षा प्राप्त करते हैं और इस्लाम की इज़्ज़त बनाए रखने में मददग़ार होते हैं। बद-क़िस्मती से वह दो फ़िरक़े[1] जिन के मदरसे लखनऊ में हैं एक दूसरे को जहन्नुमी समझते हैं। मगर हम अपनी आँखों से इस फ़िरक़ाबंदी का चश्मा उतार दें और ठंडे दिल से इन दोनों गिरोह के शिक्षकों और विद्यार्थियों पर नज़र डालें तो हम इन सब के चहरों पर उस ईमानी नूर की झलक पाएंगे जिस से उनके दिल और दिमाग़ रोशन

---

[1] पंथ, सम्प्रदाय, गिरोह।

हैं। उनके लम्बे कुर्ते और चोगें, उन की जूती और स्लीपर, उनकी दो पल्ली टोपियाँ, उनका घुटा हुआ गोल सर और उनकी मुबारक दाढ़ियाँ जिन के एक एक बाल को हूरें अपनी आँखों से मलेंगे, इस सब से उन की पाकी और परहेज़गारी[1] टपकती है। मौलवी मोहम्मद दाऊद साहब बरसों से एक मदरसे में पढ़ाते हैं और अपनी अक्लमंदी के लिए मशहूर थे। इबादत गुजारी का यह हाल था कि रमज़ान मुबारक के महीने की रात क़ुरआन व नमाज़ पढ़ने में गुज़र जाती थी और उन्हें ख़बर तक न होती। दूसरे दिन जब पढ़ाते वक़्त नींद झपकियाँ आती थी तो विद्यार्थी समझते थे कि मौलाना को रूहानी सुरूर[2] हो रहा है और ख़ामोशी से उठकर चले जाते।

रमज़ान का मुबारक महीना हर मुसलमान के लिए ख़ुदा की रहमत है। ख़ासकर जब रमज़ान मई और जून के लम्बे दिन और तपती हुई धूप के साथ पड़ें। ज़ाहिर है कि इंसान जितनी ज़्यादा तकलीफ़ बर्दाश्त करता है उतना ही सवाब का हक़दार होता है। उन जबरज़स्त गर्मी के दिनों में अल्लाह का हर नैक बंदा उस एक बिछड़े हुए शेर के जैसा होता है जो ख़ुदा की राह

---

[1] संयम-नियम का पालन करने वाला।

[2] आत्मिक आनंद,

में जिहाद[1] करता है। उसका सूखा हुआ चेहरा और उसकी धंसी हुई आँखें पुकार पुकार कर कहती हैं :-

> “ ऐ वह गिरोह ! जो ईमान नहीं लाते और ऐ वो बदनसीबों! जिनके ईमान डगमगा रहे हैं, देखो ! हमारी सूरत देखो ! और शर्मिंदा हो। तुम्हारे दिलों पर, तुम्हारी सुनने की ताक़त पर और तुम्हारी देखने की ताक़त पर अल्लाह पाक ने मोहर लगा दी है। मगर वो जिनके दिल ख़ुदा के डर से थर थरा रहे हैं, इस तरह उसके हुक्म मानते हैं।”

यूँ तो इस मुबारक महीने का हर दिन और हर रात इबादत के लिए है। लेकिन सबसे ज़्यादा बड़ाई शब ए क़द्र[2] की है। इस रात को ख़ुदा के दर के दरवाज़े दुआ क़ुबूल के लिए खोल दिए जाते हैं। गुनाहगारों की तौबा क़ुबूल कर ली जाती है और मोमिन बेहिसाब सवाब लूटते हैं। ख़ुशनसीब है वो बन्दे जो इस मुबारक रात को नमाज़ और क़ुरआन पढ़ने में बिताते हैं। मौलवी दाऊद

---

[1]नैतिक मूल्यों के लिए किया जाने वाला संघर्ष,धर्मयुद्ध

[2]रमज़ान के महीने की 27 वीं रात, इस रात में इबादत करने का बहुत सवाब(पुण्य) मिलता है।

साहब कभी ऐसे अच्छे मोक़ों पर ग़लती नहीं करते थे। इंसान हर पल और हर वक़्त में न जाने कितने गुनाह करता है।अच्छे बुरे हज़ारों ख्याल दिमाग़ से गुज़रते हैं। क़यामत के भयानक दिन जब हर इंसान के गुनाह और सवाब तोले जाएँगे और रत्ती रत्ती का हिसाब देना होगा तो क्या मालूम क्या परिणाम हो। इस लिए बहतर यही है जितना ज़्यादा सवाब हासिल कर सकते हैं उतना ज़्यादा हासिल कर लिया जाए। मौलवी दाऊद साहब को जब लोग मना करते थे कि इतनी ज़्यादा मेहनत न करें तो वो हमेशा यही जवाब देते ।

मौलाना की उम्र कोई पचास साल होगी। क़द छोटा था। रंग गेहुँआ, तिकुनी दाढ़ी, बाल खिचड़ी थे। मौलाना की शादी उन्नीस या बीस बरस में हो गई थी।आठवें बच्चे के जन्म के समय उनकी पहली बीवी की मौत हो गई। दो साल बाद उनचास बरस की उम्र में मौलाना ने दूसरा निकाह किया। मगर इन नई बीवी की वज़ह से जान मुश्किल में रहती। बीवी और मौलवी दाऊद साहब की उम्र में करीब बीस बरस का फ़र्क़ था। इस लिए मौलाना उन्हें यकीन दिलाया करते थे कि उनकी दाढ़ी के कुछ बाल जुखाम की वज़ह से सफ़ेद हो गए हैं। लेकिन उनकी जवान बीवी फ़ौरन दूसरे सुबूत पैश करतीं और मौलाना को चुप होना पड़ता।

एक साल के लम्बे इंतिज़ार के बाद शब ए कद्र फिर आई। इफ़्तार[1] के बाद मौलाना घंटे आधे घंटे लेटे, उसके बद नहा कर मस्जिद में नमाज़ व दुआ के लिए फ़ौरन चले गए। मस्जिद में मुसलामानों का हुजूम था। अल्लाह के मानने वाले और नैक बन्दे , तहमद[2] बांधे लम्बी लम्बी डकारे लेते हुए मौलाना दाऊद साहब से हाथ मिलाने के लिए लपके। मौलाना के चहरे से नूर टपक रहा था और उनका असा,[3] पूरे हुजूम पर उनके ईमान की पाकी का रोब जता रहा था। इशा[4] के बाद डेढ़ दो बजे रात तक सवाब का सिलसिला लगातार जारी रहा। इसके बाद सहरी[5] के लज़ीज़ पकवानों से जिस्म ने ताक़त पाई और मौलाना घर वापस चले। जम्हाई पर जम्हाई चली आती थी, शीरमाल, पुलाव और खीर से भरा हुआ पेट आराम ढून्ढ रहा था। ख़ुदा ख़ुदा करके मौलाना घर वापस पहुँचे। आत्मा और शरीर के बीच जबरजस्त जंग जारी थी। शब ए कद्र के अभी तीन घंटे शेष थे। जो इबादत में लगाए जा सकते थे। मगर जिस्म को भी सुकून और नींद की बेहद ज़रूरत थी।

---

[1] दिन भर व्रत,रोज़ा के बाद सूर्यास्त के समय खाना खाना।व्रत तोड़ना।

[2] लुंगी

[3] हाथ में पकड़ी जाने वाली लकड़ी,छड़ी।

[4] रात की नमाज़।

[5] व्रत के लिए सुबह तड़के किये जाने वाला भोजन।

आख़िरकार उस पुराने नैक बंदे ने रूह का दामन थाम लिया और आँखे मल कर नींद भगाने की कोशिश की।

घर में अँधेरा छाया हुआ था, लालटेन मुझी पड़ी थी। मौलाना ने माचिस इधर उधर टटोली मगर वो न मिली। आँगन के एक कोने में उनकी बीवी का पलंग था। मौलाना दबे पाऊँ, डरते डरते, उधर बढ़े और आहिस्ता से बीवी का कंधा हिलाया। गर्मियों की तारों भरी रात और रात के आख़री सन्नाटे में मौलवी साहब की जवान बीवी गहरी नींद में सो रही थी। आख़िरकार उन्होंने करवट बदली, और आधी जागती हुई, आधी सोती हुई धीमी आवाज़ में पूछा "ऐ क्या है ?"

मौलाना इस नरम आवाज़ के सुनने के आदि न थे। हिम्मत करके एक लफ्ज़ बोले "माचिस"।

मौलवी साहब की बीवी पर अभी तक नींद हावी थी, मगर कच्ची पक्की नींद के माहौल में, रात का अँधेरा, सितारों की जगमगाहट, और हवा की ठंडक ने जवानी पर इतना जादू कर दिया था कि अचानक उन्होंने मौलाना का हाथ अपनी तरफ खींचा और उनके गले में दोनों बाहें डाल कर, अपने गाल को उनके मुँह पर रख कर लम्बी लम्बी साँसें लेते हुए कहा "आओ लेटो" !

एक पल के लिए मौलाना का दिल फड़क गया। मगर दूसरे पल उन्हें "हव्वा की ख़्वाइश, आदम का पहला गुनाह, जुलेख़ा का इश्क़, युसूफ का दामन फटना[1]", यहाँ तक कि औरत के गुनाहों की पूरी की पूरी लिस्ट याद आ गई और अपने पर क़ाबू हो गया। चाहे यह उम्र की वज़ह से हो या ख़ुदा का डर या रूहानियत की वजह से हो, लेकिन मौलाना जल्दी से अपनी बीवी के हाथ से निकल कर उठ खड़े हुए और पतली आवाज़ से पूछा "माचिस कहाँ है ?"

एक मिनट में औरत की नींद और ख्वाइशों की उमंग दोनों ग़ायब होकर ता`ने वाले ग़ुस्से से बदल गईं। मौलाना की बीवी पलंग पर उठ बैठीं और ज़हर से भुजी हुई ज़बान से एक एक लफ्ज़ तौल तौल कर कहा "बुड्ढा मुआ ! आठ बच्चों का बाप ! बड़ा नमाज़ी बना है ! रात की नींद हराम कर दी, माचिस, माचिस ! ताक़ पर पड़ी होगी।"

---

[1] "हव्वा की ख़्वाइश, आदम का पहला गुनाह, जुलेख़ा का इश्क़, युसूफ का दामन फटना"

"हव्वा"- यहूदी, ईसाई तथा मुस्लिम मतानुसार संसार की वह पहली स्त्री जो आदम की पत्नी थी। स्वर्ग में हव्वा ने ईश्वर द्वारा निषेद किए गए फल (गंदुम) को खाने की ख्वाइश (इच्छा) जताई, जिस कारण से हव्वा और आदम को स्वर्ग से निकाल दिया गया।

"जुलेख़ा"- मिस्र नरेश की स्त्री थी जो कि "युसुफ़" (यहूदी, ईसाई तथा मुस्लिम मतानुसार ईशदूत, रसूल हैं) की ख़ूबसूरती पर आशिक़ हो जाती है और एक दिन उत्तेजित होकर युसुफ को पकड़ने की कोशिश करती है, जिस कारण से युसुफ का दमन फट जाता है।

एक बूढ़े मर्द का दिल दुखाने के लिए इससे ज़्यादा तकलीफ वाली बात और क्या होगी कि उसकी जवान बीवी उसे बुड्ढा कहे। मौलाना काँप गए मगर कुछ बोले नहीं। उन्होंने लालटेन जला कर एक चोकी पर जा-ए-नमाज़[1] बिछाई और कुरआन पढ़ने में मशग़ूल हो गए । मौलाना की नींद तो उड़ गई थी मगर लगभग आधे घंटे के बाद भरे हुए पेट में उठती हवाओं ने जिस्म को चूर करके आँखों को दबाना शुरू किया। 'सूरह रहमान'[2] का लुत्फ़ और मौलाना की दिल को छूने वाली आवाज़ ने लोरी का काम किया। तीन चार बार ऊंघ कर मौलाना जा-ए-नमाज़ ही पर फ़बि अय्यि, अय्यि[3] कहते कहते सो गए।

पहले तो उन पर नींद में खो जाने की हालत रही, उसके बाद उन्होंने अचानक महसूस किया कि वो अकेले, तन्हा, एक अँधेरे मैदान में खड़े हुए हैं। और डर से काँप रहे हैं। थोड़ी देर के बाद यह अंधेरा रौशनी से बदलने लगा और किसी ने उनके पास आकर कहा "सज्दा कर ! तू ख़ुदा के दरबार में है।" कहने की देरी थी कि मौलवी

---

[1] नमाज़ पढ़ने के लिए बिछाए जाने वाला कपड़ा,चटाई,कालीन।

[2] क़ुरआन के एक अध्याय का नाम।

[3] क़ुरआन अध्याय 55 की एक आयत जिसका अर्थ है- तुम अपने रब की कौन-कौन सी नेमत,वरदान को झुटलाओगे।

साहब सज्दे में गिर पड़े और एक दिल दहला देने वाली आवाज़, बादल के गरज की तरह, चारों तरफ़ से गूंजती हुई मौलवी साहब के कानों में आईः-

> "मेरे बन्दे हम तुझ से खुश हैं ! तू हमारे हुक्म मानने में पूरी ज़िन्दगी इस तरह डूबा रहा कि कभी अपनी अक्ल और अपनी सोच को हावी न किया, यह जो दोनों शैतानी ताक़ते हैं 'कुफ्र-ओ-इल्हाद[1]' की जड़ें हैं। इंसानी समझ ईमान व भरोसे की दुश्मन है। तू इस राज़ को खूब समझा और तूने कभी ईमान की रौशनी को अक्ल के जंग से अँधेरा न होने दिया तेरा ईमान हमेशा के लिए जन्नत है जिसमें तेरी ख़्वाइश पूरी की जाएगी।"

थोड़ी देर तक तो मौलवी साहब पर ख़ुदा का रोब इस तरह हावी रहा कि सज्दे से सर उठाने की हिम्मत न हुई। कुछ जब दिल की धड़कन कम हुईं तो उन्होंने लेटे लेटे कनखियों आँखों से अपने दाएँ बाएँ नज़र डाली। इन आँखों ने कुछ और ही नज़ारा देखा। सुनसान मैदान एक बड़ा आलिशान गोल कमरे से बदल गया था। इस कमरे की दीवारें जो जवाहरात की थीं जिन पर अनोखे निशान

---

[1] अधर्मी और नास्तिकता

बने हुए थे। लाल, हरे, पीले, सुनहरे और सफ़ेद। जगमगाते हुए फूल और फल मालूम होता था कि दिवार से टपके पड़ते हैं। रोशनी दीवारों से छन छन कर आ रही थी, लेकिन ऐसी रोशनी जिससे आँखों को ठंडक पहुंचे ! मौलाना उठ बैठे और चारो तरफ नज़र दौड़ाई।

अजब ! अजब ! चारो तरफ कमरे की दीवारों पर कोई साठ या सत्तर इंसानी लम्बाई के बराबर खिड़कियाँ थीं और हर खिड़की के सामने एक छोटा सा झरोखा। हर एक झरोखे पर एक हूर[1] खड़ी हुई थीं। मौलाना जिस तरफ नज़र फैराते हूरें उनकी तरफ देख कर मुस्कुरातीं और दिल लुभाने वाले इशारे करतीं। मगर मौलाना झैंप कर आँखे झुका लेते। दुनिया का भला आदमी इस लिए शर्मिंदा था कि यह सब की सब हूरें सर से पैर तक नंगी थीं। अचानक मौलाना ने अपने जिस्म पर जो नज़र डाली तो खुद भी इसी नूरानी कपड़ों में थे। घबरा कर उन्होंने इधर उधर देखा कि कोई हँस तो नहीं रहा है, मगर उन हूरों के अलवा कोई और नज़र नहीं आया। दुनिया की शर्म अभी बिलकुल ख़त्म नहीं हुई थी लेकिन दुश्मनों के तंज़ और हँसी जन्नत में कहीं नाम को भी न थी। मौलाना की घबराहट कम हुई। उनकी रगों में जवानी का ख़ून फिर से दौड़

---

[1] स्वर्ग अप्सरा

रहा था, वह जवानी.......... जिसकी ढलान नहीं !

मौलाना ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फैरा और मुस्कुराते हुए एक खिड़की की तरफ़ बड़े, हूर आगे बढ़ी और उन्होंने उस पर सर से पैर तक नजर डाली। उसके जिस्म का दमकता हुआ चम्पई रंग, उसकी कटीली आँखें, उसकी दिल लुभाने वाली मुस्कराहट, इस जन्नत के नज़ारे से मौलाना की आँख हटती ही न थी। लेकिन इंसान एक अच्छी चीज़ से भला कब तक ख़ुश हो सकता है। मौलाना के क़दम उठे और वो दूसरे झरोखे की तरफ बढ़े। इसी तरह वो हर झरोखे पर जाकर थोड़ी थोड़ी देर रुकते, इन जन्नती हस्तियों के बदन के हर हर हिस्से को गौर से देखते और मुस्कुरा कर दुरूद[1] पढ़ते हुए आगे बढ़ जाते। किसी के काले घुंघराले बाल उन्हें सबसे ज़्यादा पसंद आते तो किसी के गुलाबी गाल, किसी के गहरे लाल होंट, किसी की टांगें, किसी की पतली उंगलियाँ, किसी की नशीली आँखें, किसी की नुकीली छातियाँ, किसी की नाज़ुक कमर, किसी का नरम पेट।

आख़िरकार एक हूर की प्यारी अदा ने मौलाना का दिल मोह लिया। वो फ़ौरन उचक कर उसके कमरे में आए और उसे तुरंत

---

[1] मोहम्मद स० और उनके परिवार पर दुआ व सलाम पढ़ना।

अपनी सीने से लगा लिया। मगर अभी होंट से होंट मिले ही थे कि पीछे से हँसने की आवाज़ आई। इस असमय हँसी पर मौलाना के ग़ुस्से की कोई हद न रही। उनकी आँख खुल गई। सूरज निकल आया था। मौलाना जा-ए-नमाज़ पर पेट के बल पड़े हुए कुरआन को सीने से लगाए थे। उनकी बीवी पास में खड़ी हँस रही थी।

गर्मियों की एक रात - सज्जाद ज़हीर

मुंशी बरकत अली इशा[1] की नमाज़ पढ़ कर चहलक़दमी करते हुए अमीनाबाद पार्क तक चले आए। गर्मियों की रात, हवा बंद थी। शर्बत की छोटी छोटी दुकानों के पास लोग खड़े बातें कर रहे थे। लौंडे चीख़ चीख़ कर अख़बार बेच रहे थे, बेले के हार वाले हर भले मानुष के पीछे हार लेकर लपकते। चौराहे पर ताँगा और यक्का वालों की लगातार पुकार जारी थी।

[1] रात की नमाज़

"चौक ! एक सवारी चौक ! मियाँ चौक पहुँचा दूँ !"

"ए हुज़ूर कोई ताँगा वांगा चाहिए ?"

"हार बेले के ! गजरे मोतिए के !"

"क्या मलाई की बर्फ़ है।"

मुंशी जी ने एक हार ख़रीदा, शर्बत पिया और पान खा कर पार्क के अंदर दाख़िल हुए। बेंचों पर बिलकुल जगह न थी। लोग नीचे घास पर लेटे हुए थे। कुछ बेसुरे गाने के शौक़ीन इधर उधर शोर मचा रहे थे, कुछ आदमी चुप बैठे धोतियाँ खिसका कर बड़े आराम से अपनी टांगें और रानें खुजाने में लीन थे। इसी समय में वो मच्छरों पर भी झपट झपट कर हमले करते जाते थे। मुंशी जी चूँकि पजामा पहनने वाले आदमी थे उन्हें इस बदतमीज़ी पर बहुत ग़ुस्सा आया। अपने मन में इन्होंने कहा कि इन कमबख़्तों को कभी तमीज़ न आएगी, इतने में एक बेंच पर से किसी ने उन्हें पुकारा।

"मुंशी बरकत अली !"

मुंशी जी मुड़े।

"अहा... लाला जी आप हैं, कहिए मिज़ाज तो अच्छे हैं !"

मुंशी जी जिस कार्यालय में नौकर थे लाला जी उसके हैड क्लर्क थे। मुंशी जी उनके अधीनस्थ थे। लाला जी ने जूते उतार दिए थे और बेंच के बीचो बीच में पैर उठा कर अपना भारी भरकम शरीर लिए बैठे थे। वो अपनी तोंद पर नरमी से हाथ फेरते जाते और अपने साथियों से जो बेंच के दोनों कोनों पर अदब से बैठे हुए थे चीख़ चीख़ कर बातें कर रहे थे। मुंशी जी को जाते देखकर उन्होंने उन्हें भी पुकार लिया। मुंशी जी लाला साहिब के सामने आकर खड़े हो गए। लाला जी हँस के बोले कहो, "मुंशी बरकत अली, ये हार वार ख़रीदे हैं क्या, इरादे क्या हैं ?" और ये कह कर ज़ोर से क़हक़हा लगा कर अपने दोनों साथियों की तरफ़ दाद पाने को देखा। उन्होंने भी लाला जी का मंशा देखकर हँसना शुरू किया।

मुंशी जी भी रूखी फीकी हँसी हँसे, जी इरादे क्या हैं हम तो आप जानिए ग़रीब आदमी ठहरे, गर्मी के मारे दम नहीं लिया जाता, रातों की नींद हराम हो गई, ये हार ले लिया शायद दो-घड़ी आँख लग जाये।लाला जी ने अपने गंजे सर पर हाथ फेरा और हँसे, " शौकीन आदमी हो मुंशी, क्यों न हो !" और ये कह कर फिर अपने साथियों से गुफ़्तगु में लीन हो गए।

मुंशी जी ने मौक़ा देख कर कहा, "अच्छा लाला जी चलते हैं, आदाब अर्ज़ है।"

और ये कह कर आगे बढ़े। दिल ही दिल में कहते थे कि दिन-भर की घुस घुस के बाद ये लाला कम्बख़्त सर पड़ा। पूछता है इरादे क्या हैं ! हम कोई रईस तालुकदार हैं कहीं के कि रात को बैठ कर मुजरा सुनें और कोठों की सैर करें, जेब में कभी चवन्नी से ज़्यादा हो भी सही, बीवी, बच्चे, साठ रुपया महीना, ऊपर से आदमी का कुछ ठीक नहीं, आज न जाने क्या था जो एक रुपया मिल गया। ये देहाती काम करने वाले कम्बख़्त हर दिन चालाक होते जाते हैं। घंटों की झक-झक के बाद जेब से टका निकालते हैं। और फिर समझते हैं कि ग़ुलाम ख़रीद लिया, सीधे बात नहीं करते। कमीना नीचे दर्जे के लोग उनका सर फिर गया है। आफ़त हम बेचारे शरीफ़ पढ़े लिखों की है। एक तरफ़ तो नीचे दर्जे के लोगों के मिज़ाज नहीं मिलते, दूसरी तरफ़ बड़े साहिब और सरकार की सख़्ती बढ़ती जाती है।

अभी दो महीने पहले की बात है, बनारस के ज़िला में दो मुहर्रिर[1] बेचारे रिश्वत लेने के जुर्म में बरख़ास्त कर दिए गए। हमेशा यही होता है ग़रीब बेचारा पिस्ता है, बड़े अफ़्सर का बहुत हुआ तो एक जगह से दूसरी जगह तबादला हो गया।

---

[1] लिपिक,क्लर्क

"मुंशी जी साहिब" किसी ने बाज़ू से पुकारा। जुम्मन चपरासी की आवाज़। मुंशी जी ने कहा,

"अहा..... तुम हो जुम्मन।"

मगर मुंशी जी चलते रहे रुके नहीं। पार्क से मुड़ कर नज़ीराबाद में पहुँच गए। जुम्मन साथ साथ हो लिया। दुबले पुतले, पिस्ताक़द, मख़मल की नाव जैसी टोपी पहने, हार हाथ में लिये, आगे आगे मुंशी जी और उनसे क़दम दो क़दम पीछे साफा बाँधे, अचकन पहने, लंबा चौड़ा चपरासी जुम्मन।

मुंशी जी ने सोचना शुरू किया कि आख़िर इस समय जुम्मन का मेरे साथ साथ चलने में क्या इरादा है।

"कहो भई जुम्मन, क्या हाल है। अभी पार्क में हैड क्लर्क साहिब से मुलाक़ात हुई थी वो भी गर्मी की शिकायत करते थे।"

"अजी मुंशी जी क्या अर्ज़ करूँ, एक गर्मी सिर्फ थोड़ी है जो मारे डालती है, साढ़े चार पाँच बजे दफ़्तर से छुट्टी मिली। इस के बाद सीधे वहाँ से बड़े साहिब के यहाँ घर पर हाज़िरी देनी पड़ी। अब जा कर वहाँ से छुटकारा हुआ तो घर जा रहा हूँ, आप जानिए कि दस बजे सुबह से रात के आठ बजे तक दौड़ धूप रहती है, कचहरी के बाद तीन बार दौड़ दौड़ कर बाज़ार जाना पड़ा। बर्फ़,

तरकारी, फल सब ख़रीद के लाओ और ऊपर से डाँट अलग पड़ती है, आज दामों में पैसे ज़्यादा क्यों है और ये फल सड़े क्यों हैं। आज जो आम ख़रीद के ले गया था वो बेगम साहिब को पसंद नहीं आए, वापसी का हुक्म हुआ मैंने कहा हुज़ूर ! अब रात को भला ये वापस कैसे होंगे, तो जवाब मिला हम कुछ नहीं जानते कूड़ा थोड़ी ख़रीदना है। तो हुज़ूर ये रुपया के आम गले पड़े, आम वाले के यहाँ गया तो एक तू तू मैं मैं करनी पड़ी, रुपया आम बारह आने में वापसी हुए, चवन्नी को चोट पड़ी महीना का ख़त्म, और घर में हुज़ूर कसम ले लीजिए जो सूखी रोटी भी खाने को हो। कुछ समझ में नहीं आता क्या करूँ और कौन सा मुँह लेकर जोरू के सामने जाऊँ।"

मुंशी जी घबराए, आख़िर जुम्मन की मंशा इस सारी दास्तान के बयान करने से क्या थी। कौन नहीं जानता कि ग़रीब तकलीफ़ उठाते हैं और भूके मरते हैं। मगर मुंशी जी का इस में क्या क़सूर ? उनकी ज़िंदगी ख़ुद कौन सी बहुत आराम से कटती है, मुंशी जी का हाथ बेइरादे अपनी जेब की तरफ़ गया। वो रुपया जो आज उन्हें ऊपर से मिला था सही सलामत जेब में मौजूद था। "ठीक कहते हो मियाँ जुम्मन, आजकल के ज़माने में ग़रीबों की मरन है जिसे देखो यही रोना रोता है, कुछ घर में खाने को नहीं। सच्च पूछो तो निशानियाँ बताती हैं कि क़यामत क़रीब है। दुनिया-

भर के ज़ालिम लोग तो चैन से मज़े उड़ाते हैं और जो बेचारे अल्लाह के नेक बंदे हैं उन्हें हर तरह की मुसीबत और तकलीफ़ बर्दाश्त करनी होती है।"

जुम्मन चुप-चाप मुंशी जी की बातें सुनता उनके पीछे पीछे चलता रहा। मुंशी जी ये सब कहते तो जाते थे मगर उनकी घबराहट भी बढ़ती जाती थी। मालूम नहीं उनकी बातों का जुम्मन पर क्या असर हो रहा था।

"कल जुमा की नमाज़[1] के बाद मौलाना साहिब ने क़यामत की निशानियो पर बयान किया, मियाँ जुम्मन सच्च कहता हूँ, जिस जिस ने सुना उसकी आँखों से आँसू जारी थे। भाई दरअसल ये हम सबकी काली करतूतों का नतीजा है, ख़ुदा की तरफ़ से जो कुछ अज़ाब हम पर उतरे हो वो कम है। कौन सी बुराई है जो हम में नहीं ? इस से कम क़सूर पर अल्लाह ने बनी-इस्राईल[2] पर जो जो मुसीबतें उतारी थीं उनका ख़्याल कर के बदन के रौंगटे खड़े हो जाते हैं मगर वो तो तुम जानते ही होगे।"

जुम्मन बोला, "हम ग़रीब आदमी मुंशी जी, भला

---

1 इस्लामी सप्ताह का सातवाँ दिन, शुक्रवार

2 पैगम्बर याकूब की संतान।

ये सब इल्म की बातें क्या जानें क़यामत के बारे में तो मैंने सुना है मगर हुज़ूर आख़िर ये बनी-इस्राईल बेचारे कौन थे।"

इस सवाल को सुनकर मुंशी जी को ज़रा सुकून हुवा। ख़ैर ग़रीबी और फ़ाक़े से गुज़र कर अब क़यामत और बनी-इस्राईल तक बात का सिलसिला पहुँच गया था। मुंशी जी ख़ुद बहुत ज़्यादा पर इस क़बीले के इतिहास के जानकार न थे मगर इन विषयों पर घंटों बातें कर सकते थे।

"ऐं ! वाह मियाँ जुम्मन वाह, तुम अपने को मुसलमान कहते हो और ये नहीं जानते कि बनी-इस्राईल किस चिड़िया का नाम है। मियाँ सारा कुरआन पाक बनी-इस्राईल के ज़िक्र से तो भरा पड़ा है। हज़रत-ए- मूसा कलीम-उल-लाह[1] का नाम भी तुमने सुना है ?"

"जी क्या फ़रमाया आपने ? कलीम-उल- लाह ?"

"अरे भई हज़रत मूसा। मू... सा।"

"मूसा... वही तो नहीं जिन पर बिजली गिरी थी ?"

मुंशी जी ज़ोर से ठट्ठा मार कर हँसे।अब उन्हें बिलकुल भरोसा हो गया। चलते चलते वो कैसरबाग के चौराहे

---

[1] पैगम्बर मूसा की उपाधि

तक भी आ पहुँचे थे। यहाँ पर तो ज़रूर ही इस भूके चपरासी का साथ छूटेगा। रात को आराम से जब कोई खाना खा कर नमाज़ पढ़ कर, दम-भर की दिल बहलाने के लिए चहलक़दमी को निकले, तो एक ग़रीब भूके इंसान का साथ साथ हो जाना, जिससे पहले की पहचान भी हो, कोई ख़ुशी की बात नहीं। मगर मियाँ जी आख़िर करते क्या ? जुम्मन को कुत्ते की तरह धुतकार तो सकते न थे क्योंकि एक तो कचहरी में रोज़ का सामना, दूसरे वो नीचे दर्जे का आदमी ठहरा, क्या ठीक, कोई बदतमीज़ी कर बैठे तो भरे बाज़ार ख़्वाह-मख़ाह अपनी बनी बनाई इज़्ज़त में बट्टा लगे। बेहतर यही था कि अब इस चौराहे पर पहुँच कर दूसरी राह ली जाये और यूँ इससे छुटकारा हो।

"ख़ैर, बनी-इस्राईल और मूसा का ज़िक्र मैं तुमसे फिर कभी पूरी तरह करूँगा, इस वक़्त तो ज़रा मुझे इधर काम से जाना है.......... सलाम मियाँ जुम्मन।"

ये कह कर मुंशी जी कैसरबाग के सिनेमा की तरफ़ बढ़े। मुंशी जी को यूँ तेज़ क़दम जाते देखकर पहले तो जुम्मन एक लम्हा के लिए अपनी जगह पर खड़ा का खड़ा रह गया, उस की समझ में नहीं आता था कि वो आख़िर करे तो क्या करे। उसके माथे पर पसीने की बूँदें चमक रहे थीं उसकी आँखें

एक बेमानी तौर पर इधर उधर मुड़ती। तेज़ बिजली की रोशनी, फ़व्वारा, सिनेमा के पोस्टर, होटल, दुकानें, मोड़, ताँगे, यक्के और सब के ऊपर अँधेरा आसमान और झिलमिलाते हुए सितारे ग़रज़ ख़ुदा की सारी बस्ती।

दूसरे लम्हा में जुम्मन मुंशी जी की तरफ़ लपका। वो अब खड़े सिनेमा के इश्तिहार देख रहे थे और बेहद ख़ुश थे कि जुम्मन से जान छूटी।

जुम्मन ने उनके क़रीब पहुँच कर कहा, “मुंशी जी !”

मुंशी जी का कलेजा धक से हो गया। सारी मज़हबी गुफ़्तगु, सारी क़यामत की बातें, सब बेकार गईं। मुंशी जी ने जुम्मन को कुछ जवाब नहीं दिया।

जुम्मन ने कहा “मुंशी जी अगर आप इस वक़्त मुझे एक रुपया क़र्ज़ दे सकते हों तो मैं हमेशा...”

मुंशी जी मुड़े, “मियाँ जुम्मन मैं जानता हूँ कि तुम इस वक़्त तंगी में हो मगर तुम तो ख़ुद जानते हो कि मेरा अपना क्या हाल है। रुपया तो रुपया एक पैसा तक मैं तुम्हें नहीं दे सकता, अगर मेरे पास होता तो भला तुमसे छुपाना थोड़ा ही था, तुम्हारे कहने की भी ज़रूरत न होती पहले ही जो कुछ होता तुम्हें दे देता।”

बावजूद इस के जुम्मन ने गुज़ारिश शुरू की, “मुंशी जी ! कसम ले लीजिए में ज़रूर आपको तनख़्वाह मिलते ही वापस कर दूँगा, सच्च कहता हूँ हुज़ूर इस वक़्त कोई मेरी मदद करने वाला नहीं...”

मुंशी जी इस झिक-झिक से बहुत घबराते थे। इंकार चाहे वो सच्चा ही क्यों न हो तकलीफ़-दह होता है। इसी वजह से तो वो शुरू से चाहते थे कि यहाँ तक नौबत ही न आए।

इतने में सिनेमा ख़त्म हुआ और दर्शक अंदर से निकले।

“अरे मियाँ बरकत, भई तुम कहाँ ?” किसी ने पास से पुकारा। मुंशी जी जुम्मन की तरफ़ से उधर मुड़े। एक साहिब मोटे ताज़े, तीस पैंतीस बरस के। अंगरखा[1] और दो पल्ली टोपी पहने, पान खाए, सिगरेट पीते हुए मुंशी जी के सामने खड़े थे।

मुंशी जी ने कहा, “अहा... तुम हो! बरसों के बाद मुलाक़ात हुई, तुमने लखनऊ तो छोड़ ही दिया ? मगर भाई क्या मालूम आते भी होगे तो हम ग़रीबों से क्यों मिलने लगे!”

ये मुंशी जी के पुराने कॉलेज के साथी थे। रुपये,

---

[1] एक परम्परागत पुरूष परिधान।

पैसे वाले रईस आदमी, वो बोले, "ख़ैर ये सब बातें तो छोड़ो, मैं दो दिन के लिए यहाँ आया हूँ, ज़रा लखनऊ में तफ़रीह के लिए चलो, इस वक़्त मेरे साथ चलो तुम्हें वो मुजरा सुनवाऊँ कि उम्र-भर याद करो, मेरी मोटर मौजूद है, अब ज़्यादा मत सोचो, बस चले चलो, सुना है तुमने कभी नूर जहाँ का गाना...? क्या गाती है, क्या गाती है, क्या नाचती है, वो अदा, वो फन, उसकी कमर की लचक, उसके पाँव के घुँघरू की झनकार ! मेरे मकान पर, खुले सेहन में, तारों की छाओं में, महफ़िल होगी। भैरवी सुनकर जलसा ख़त्म होगा। बस अब ज़्यादा न सोचो, चले ही चलो। कल इतवार है... बीवी!

बेगम साहिबा की जूतियों का डर है, अगर ऐसा ही औरत की ग़ुलामी करना थी तो शादी क्यों की ? चलो भी मियाँ ! लुत्फ़ रहेगा, रूठी बेगम को मनाने में भी तो मज़ा है..."

पुराना दोस्त, मोटर की सवारी, नाच गाना, ख़ुश नज़ारे, मधुर संगीत, मुंशी जी लपक कर मोटर में सवार हो लिये। जुम्मन की तरफ़ उनका ध्यान भी न गया। जब मोटर चलने लगी तो उन्होंने देखा कि वो वहाँ इसी तरह चुप खड़ा है।

दुलारी

- सज्जाद ज़हीर

हालाँकि बचपन से वो इस घर में रही और पली, मगर सोलवहीं सत्रहवीं बरस में थी कि आख़िरकार लौंडी[1] भाग गई। उसके माँ-बाप का पता नहीं था। उसकी सारी दुनिया यही घर था और उसके घर वाले। शेख़ नाज़िम अली साहब ख़ुशहाल आदमी थे, घराने में माशा अल्लाह कई बेटे और बेटियाँ भी थीं। बेगम साहिबा भी जीती जागती थीं और औरतों में उनका पूरा राज था। दुलारी ख़ास उनकी लौंडी थी। घर में नौकरानियाँ और काम वालियाँ आतीं। महीने दो महीने , साल दो साल काम करतीं उसके बाद ज़रा सी बात पर झगड़ कर नौकरी छोड़ देतीं और चली जातीं

[1] दासी,सेवा करने वाली लड़की।

मगर दुलारी के लिए हमेशा एक ही ठिकाना था। उससे घर वाले काफ़ी मेहरबानी से पेश आते। ऊंचे दर्जे के लोग हमेशा अपने से नीचे तबक़े वालों का ख़्याल रखते हैं। दुलारी को खाने और कपड़े की शिकायत न थी। दूसरी नौकरानियों के मुक़ाबले में उस की हालत अच्छी ही थी। मगर बावजूद इसके कभी- कभी जब किसी कामवाली से झगड़ा होता तो वो ये तंज़ हमेशा सुनती मैं तेरी तरह कोई लौंडी थोड़ी हूँ। इसका दुलारी के पास कोई जवाब न होता।

उसका बचपन बे-फ़िक्री में गुज़रा। उसका रुत्बा घर की बीबियों से तो क्या नौकरानियों से भी कम था। वो पैदा ही उस दर्जे में हुई थी। ये तो सब ख़ुदा का किया धरा है, वही जिसे चाहता है इज़्ज़त देता है जिसे चाहता है ज़लील करता है, इसका रोना किया ? दुलारी को अपनी नीचता की कोई शिकायत न थी। मगर जब उस की उम्र का वो ज़माना आया जब लड़कपन ख़त्म और जवानी शुरू होती है और दिल की गहरी और अँधेरी बेचैनियाँ ज़िंदगी को कभी कड़वी और कभी मीठी बनाती हैं तो वो अक्सर उदास सी रहने लगी। लेकिन ये एक आंतरिक स्थिति थी जिसका उसे न तो कारण पता था न दवा। छोटी साहबज़ादी हसीना बेगम और दुलारी दोनों क़रीब क़रीब हमजोली थीं और साथ खेलतीं। मगर जैसे जैसे उनकी उम्र बढ़ती थी वैसे वैसे दोनों के बीच दूरियाँ

ज़्यादा होती जाती। साहबज़ादी क्यों कि शरीफ़ थीं उनका वक़्त पढ़ने लिखने, सीने पिरोने, में बीतने लगा। दुलारी कमरों की ख़ाक साफ़ करती, झूटे बर्तन धोती, घड़ों में पानी भर्ती। वो ख़ूबसूरत थी। बड़ा चेहरा, लंबे- लंबे हाथ पैर, भरा जिस्म, मगर आम तौर से उस के कपड़े मैले कुचैले होते और उसके बदन से बू आती। त्योहार के दिनों ज़रूर वो अपने रखे हुए कपड़े निकाल कर पहनती और श्रृंगार करती, या अगर कभी इक्का-दुक्का उसे बेगम साहिबा या साहबज़ादियों के साथ कहीं जाना होता तब भी उसे साफ़ कपड़े पहनना होते।

शब-ए-बरात[1] थी। दुलारी गुड़िया बनी थी। औरतों के आँगन में आतिशबाज़ी छूट रही थी। सब घर वाले नौकर-चाकर खड़े तमाशा देखते। बच्चे हल्ला मचा रहे थे। बड़े साहबज़ादे काज़िम भी मौजूद थे जिनकी उम्र बीस-इक्कीस बरस की थी। ये अपनी कॉलेज की पढ़ाई ख़त्म ही करने वाले थे। बेगम साहिबा उन्हें बहुत चाहती थीं मगर ये हमेशा घरवालों से नाराज़ रहते और उन्हें संकीर्ण और जाहिल समझते। जब छुट्टीयों में घर आते तो उनको बहस ही करते गुज़र जातीं, ये अक्सर पुरानी रस्मों के ख़िलाफ़ थे

[1] हिजरी कैलेण्डर के शाबान महीने की 14 तरीख़ की रात, जिसमें मुसलमान रात भर नमाज़ पढ़ते हैं इबादत करते हैं।

मगर नाराज़गी ज़ाहिर करके सब कुछ बर्दाश्त कर लेते। इससे ज़्यादा कुछ करने के लिए तैयार नहीं थे।

उन्हें प्यास लगी, और उन्होंने अपनी माँ के कंधे पर सर रखकर कहा, “अम्मी जान प्यास लगी है।” बेगम साहिबा ने मुहब्बत भरे लहजे में जवाब दिया, “बेटा शर्बत पियो, में अभी बनवाती हूँ”, और ये कह कर दुलारी को पुकार कर कहा कि शर्बत तैयार करे। काज़िम बोले, “जी नहीं अम्मी जान, उसे तमाशा देखने दीजिए, मैं ख़ुद अंदर जा कर पानी पी लूँगा।” मगर दुलारी हुक्म मिलते ही अंदर की तरफ़ चल दी थी। काज़िम भी पीछे- पीछे दौड़े। दुलारी एक तंग अँधेरी कोठरी में शर्बत की बोतल निकाल रही थी। काज़िम भी वहीं पहुँच कर रुके। दुलारी ने मुड़ कर पूछा, “आपके लिए कौनसा शर्बत तैयार करूँ ?” मगर उसे कोई जवाब न मिला। काज़िम ने दुलारी को आँख भर के देखा, दुलारी का सारा जिस्म थरथराने लगा और उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने एक बोतल उठा ली और दरवाज़े की तरफ़ बढ़ी। काज़िम ने बढ़कर उसके हाथ से

बोतल लेकर अलग रख दी और उसे गले से लगा लिया। लड़की ने आँखें बंद कर लीं और अपने तन-मन को उसकी गोद में दे दिया।

दो हस्तियों ने, जिनकी वैचारिक ज़िंदगी में ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ था, अचानक ये महसूस किया कि वो उम्मीदों के किनारे पर आ गए। दरअसल वो तिनकों की तरह काली शक्तियों के समुंदर में बहे चले जा रहे थे।

एक साल गुज़र गया। काज़िम की शादी ठहरी गई। शादी के दिन आ गए। चार- पाँच दिन में घर में दुल्हन आ जाएगी। घर में मेहमानों का हुजूम है। एक जश्न है काम बहुत हैं। दुलारी एक दिन रात को ग़ायब हो गई, बहुत छानबीन हुई, पुलिस को ख़बर दी गई, मगर कहीं पता न चला। एक नौकर पर सबका शक था, लोग कहते थे कि उसी की मदद से दुलारी भागी और वही उसे छुपाए हुए है। वो नौकर निकाल दिया गया। हक़ीक़त में दुलारी उसी के पास निकली मगर उसने वापस जाने से साफ़ इंकार कर दिया।

तीन- चार महीने बाद शेख़ नाज़िम अली साहिब के एक बुड्ढे नौकर ने दुलारी को शहर की ग़रीब रंडीयों के मुहल्ले में देखा। बुढ्ढा बेचारा बचपन से दुलारी को जानता था। वो उसके पास गया और घंटों तक दुलारी को समझाया कि वापस चले, वो राज़ी हो गई। बूढ्ढा समझता था कि उसे इनाम मिलेगा और ये लड़की मुसीबत से बचेगी।

दुलारी की वापसी ने सारे घर में खलबली डाल दी। वो गर्दन झुकाए सर से पैर तक एक सफ़ेद चादर ओढ़े, परेशान सूरत, अंदर दाख़िल हुई और दालान के कोने में जाकर ज़मीन पर बैठ गई। पहले तो नौकरानियाँ आईं। वो दूर से खड़े हो कर उसे देखतीं और अफ़सोस करके चली जातीं। इतने में नाज़िम अली साहिब ज़नाने[1] में तशरीफ़ लाए। उन्हें जब मालूम हुआ कि दुलारी वापस आ गई है, तो वो बाहर निकले, जहाँ दुलारी बैठी थी। वो काम-काजी आदमी थे, घर के मामलों में बहुत कम हिस्सा लेते थे, उन्हें भला इन ज़रा- ज़रा सी बातों की कहाँ फ़ुर्सत थी। दुलारी को दूर से पुकार कर कहा, "बेवक़ूफ़, अब ऐसी हरकत न करना।" और ये कह कर अपने काम पर चले गए।

इसके बाद छोटी साहबज़ादी, दबे क़दम, अंदर से आईं और दुलारी के पास पहुंचीं, मगर बहुत क़रीब नहीं, उस वक़्त वहाँ और कोई न था। वो दुलारी के साथ की खेली हुई थी, दुलारी के भागने का उन्हें बहुत अफ़सोस था। शरीफ़, पाक-बाज़, इज़्ज़तदार हसीना बेगम को उस ग़रीब बेचारी पर बहुत तरस आ रहा था मगर उनकी समझ में न आता था कि कोई लड़की कैसे ऐसे घर का सहारा छोड़कर जहाँ उस की सारी ज़िंदगी बसर हुई हो

---

[1] महिलाओं के लिए चिन्हित किया गया स्थान। वह स्थान जहाँ मर्दों के बिना अनुमति प्रवेश निषेध होता है।

बाहर क़दम तक रख सकती है, और फिर परिणाम क्या हुआ ? इज़्ज़त बेचना, ग़रीबी, ज़िल्लत, ये सच्च है कि वो लौंडी थी, मगर भागने से उसकी हालत बेहतर कैसे हुई ?

दुलारी गर्दन झुकाए बैठी थी। हसीना बेगम ने ख़्याल किया कि वो अपने किए पर शर्मिंदा है। इस घर से भागना, जिसमें वो पली, एहसान फ़रामोशी थी, मगर इसकी उसे काफ़ी सज़ा मिल गई, ख़ुदा भी गुनहगारों की तौबा क़बूल कर लेता है। हालाँकि उसकी इज़्ज़त मिट्टी में मिल गई मगर एक लौंडी के लिए ये इतनी अहम चीज़ नहीं जितनी एक शरीफ़ ज़ादी के लिए। किसी नौकर से इसकी शादी कर दी जाएगी। सब फिर से ठीक हो जाएगा। इन्होंने आहिस्ता से नरम लहजे में कहा, “दुलारी ये तूने क्या किया ?” दुलारी ने गर्दन उठाई, डबडबाई आँखों से एक लम्हा के लिए अपने बचपन की हमजोली को देखा और फिर उसी तरह से सर झुका लिया।

हसीना बेगम वापस जा रही थीं कि ख़ुद बेगम साहिबा आ गईं। उनके चेहरे पर जीत की मुस्कुराहट थी, वो दुलारी के बिलकुल पास आकर खड़ी हो गईं। दुलारी उसी तरह चुप, गर्दन झुकाए बैठी रही। बेगम साहिबा ने उसे डाँटना शुरू किया, “बे-हया! आख़िर जहाँ से गई थी वहीं वापस आई ना, मगर मुँह काला कर के

सारा ज़माना तुझ पर थू-थू करता है। बुरे काम का यही अंजाम है...” मगर बावजूद इन सब बातों के बेगम साहिबा उसके लौट आने से ख़ुश थीं। जब से दुलारी भागी थी घर का काम इतनी अच्छी तरह नहीं होता था।

इस लानत का तमाशा देखने, सब घर वाले बेगम साहिबा और दुलारी के चारों तरफ़ जमा हो गए थे। एक गंदी, नाचीज़ हस्ती को इस तरह ज़लील देखकर सब के सब अपनी बड़ाई और बेहतरी महसूस कर रहे थे। मुर्दा खोर गिद्ध भला कब समझते हैं कि जिस लाचार जिस्म पर वो अपनी नुकीली ठोंगें मारते हैं, बे-जान होने के बावजूद भी उनके ऐसे ज़िंदों से बेहतर है।

अचानक बग़ल के कमरे से काज़िम अपनी ख़ूबसूरत दुल्हन के साथ निकले और अपनी माँ की तरफ़ बढ़े। उन्होंने दुलारी पर नज़र नहीं डाली। उनके चेहरे से ग़ुस्सा था। उन्होंने अपनी अम्मी से तीख़े अंदाज़ में कहा, “अम्मी.........

ख़ुदा के लिए इस बदनसीब को अकेला छोड़ दीजिए, वो बहुत सज़ा पा चुकी है आप देखती नहीं कि इसकी हालत क्या हो रही है !”

लड़की इस आवाज़ के सुनने की ताब न ला सकी।

उसकी आँखों के सामने वो मंजर आ गए जब वो और काज़िम रातों की तन्हाई में एक होते थे, जब उसके कान प्यार के लफ़्ज़ सुनने के आदी थे। काज़िम की शादी उसके सीने में खंज़र की तरह चुभती थी। उस चुभन, उसी बेदिली ने उसे कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया, और अब ये हालत है कि वो भी यूँ बातें करने लगे ! इस अंदरूनी उलझन ने दुलारी को इस वक़्त औरत की इज़्ज़त व एहसास का बुत बना दिया। वो उठ खड़ी हुई और उसने सारे गिरोह पर एक ऐसी नज़र डाली कि एक- एक कर के सबने हटना शुरू किया। मगर ये एक ज़ख़्मी, पर कटी चिड़िया की उड़ान की आख़िरी कोशिश थी। उस दिन, रात को वो फिर ग़ायब हो गई।

फ़िर यह हंगामा...... - सज्जाद ज़हीर

मज़हब दरअसल बड़ी चीज़ है। तकलीफ़ में, मुसीबत में, नाकामी के मौक़े पर, जब हमारी अक़्ल काम नहीं करती और हमारे होश गायब होते हैं, जब हम एक ज़ख़्मी जानवर की तरह चारों तरफ़ डरी हुई लाचार नज़रें दौड़ाते हैं, उस वक़्त वो कौन सी ताक़त है जो हमारे डूबते हुए दिल को सहारा देती है ? मज़हब ! और मज़हब की जड़ ईमान है । डर और ईमान।

मज़हब की परिभाषा शब्दों में नहीं की जा सकती। उसे हम अक़्ल के ज़ोर से नहीं समझ सकते। ये एक अंदरूनी कैफ़ीयत है...

"क्या कहा? अंदरूनी कैफ़ीयत ?"

"ये कोई हँसने की बात नहीं, मज़हब एक आसमानी रौशनी है जिसकी किरणों में हम कायनात का जलवा देखते हैं। ये एक अंदरूनी..."

"ख़ुदा के वास्ते कुछ और बातें कीजीए, आपको इस वक़्त मेरी अंदरूनी कैफ़ियत का अंदाज़ा नहीं मालूम होता। मेरे पेट में तेज़ दर्द हो रहा है इस वक़्त मुझे आसमानी रौशनी की ज़रूरत बिल्कुल नहीं। मुझे जुलाब..."

एक-बार रात को मैं नॉवेल पढ़ने में मगन था कि चुपके से कोई मेरे कमरे में आया और मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मैंने जो आँख उठाई तो क्या देखा कि मियाँ इब्लीस[1] खड़े हैं।

मैंने कहा, "इब्लीस साहिब ! इस वक़्त आख़िर आपका मतलब मेरे यहाँ आने से क्या है, में एक बहुत दिलचस्प नॉवेल पढ़ने में व्यस्त हूँ, ख़्वाह-मख़ाह आप फिर चाहते हैं कि मैं किताब बंद कर के आपसे मज़हबी बहस शुरू करूँ। मेरे ख़याल से नॉवेल पढ़ना मज़हबी बातों में सर खपाने से बेहतर है। आपने जो मेरे दिल में

[1] शैतान। यहूदी, ईसाई और मुस्लिम मतानुसार इब्लीस भी पहले एक फ़रिश्ता हुआ करता था, लेकिन ईश्वर का आदेश न मानने पर शैतान बना दिया गया।

बेचैनी करने की कोशिश की है मैं बिलकुल भी उसका शिकार नहीं होना चाहता।”

मेरे इस कहने पर वो इब्लीस जैसा शख़्स मुड़ा और कमरे के बाहर जाने लगा। इस तरह एक फ़रिश्ते के साथ बर्ताव करने पर मेरा दिल मुझे कुछ-कुछ डांट फटकार करने लगा ही था कि वो शख़्स अचानक से मेरी तरफ़ पल्टा और अफ़सोस भरी आवाज़ में मुझसे कहा, “मैं इब्लीस नहीं जिब्राईल[1] हूँ। मैं तुम पर इस का आरोप नहीं रखना चाहता कि तुमने मुझे इब्लीस कहा। इब्लीस भी आख़िर मेरे ही जैसा ऐसा एक फ़रिश्ता है। तुम तो क्या तुमसे बड़े लोगों ने अक्सर मुझे इब्लीस समझ कर घर से निकाल दिया। पैगम्बरों[2] तक से ये ग़लती हो चुकी है। बात ये है कि मैं अच्छाई का फ़रिश्ता हूँ। मेरी सूरत से पाकी टपकती है। अगर इब्लीस की तरह मैं हसीन होता तो शायद लोग मुझसे इस तरह का बर्ताव न करते। और भला आप ये कैसे समझे कि मैं आपसे मज़हबी बहस करना चाहता हूँ ? मुझे बहस से कोई मतलब नहीं। हर बहस चूँकि वो अक़्ल और दलील पर बनी होती है शैतानी चीज़ है। मज़हब की जड़ ईमान है अगर तुम्हारी जड़ मज़बूत है तो फिर

---

[1] एक फ़रिश्ते का नाम।

[2] ईशदूत

ख़ुदा ख़ुद मज़हबी बहस में तुम्हारा साथ देता है और जब ख़ुदा की मदद शामिल हो तो फिर अक़्ल से क्या वास्ता ? मज़हब दरअसल बड़ी अच्छी चीज़ है...”

अक़्ल और ईमान, आसमान और ज़मीं, इन्सान और फ़रिश्ता, ख़ुदा और शैतान, मैं क्या सोच रहा हूँ ? सूखी हुई बंज़र ज़मीन बरसात में बारिश से ताज़ा हो जाती है और उसमें से अनोखी तरह की ख़ुशगवार,सोंधी ख़ुशबू आने लगती है। अकाल में लोग भूके मरते हैं। बूढ़े, बच्चे, जवान, औरत, मर्द आँखों में हलक़े पड़े हुए, चेहरे पीले, हड्डियां, पसलियाँ झुर्री पड़ी हुई खाल को चीर कर मालूम होता है बाहर निकली पड़ रही हैं। भूक की तकलीफ़, हैज़ा की बीमारी, उल्टी, दस्त, मक्खियाँ, मौत कोई लाशों को गाड़ने या जलाने वाला नहीं, लाशें सड़ती हैं और उनमें से अजीब तरह की बदबू आने लगती है।

एक अमीर के यहाँ एक विदेशी कुत्ता पला था। उसका नाम था शेरा। उसके लिए रोज़ की ख़ुराक तय थी और वो आम तौर से घर के आँगन के अंदर ही रहा करता था। कभी -कभी बाज़ारी कुतियों के पीछे अलबत्ता भागता था। जब वो बड़ा हुआ तब उसकी ये आ’दत भी बढ़ी। मुहल्ले में और जो दुबले, पतले, बाज़ारी कुत्ते थे वो जब शेरा को आता देखते तो अपनी कुतियों को छोड़कर भाग

जाते और दूर से खड़े हो कर शेरा पर भौंकते। शेरा कुतियों के साथ रहता और उन कुत्तों की तरफ़ देखा भी न करता। थोड़े दिनों के बाद अचानक ऐसा हुआ कि बड़ा भारी शेरा से लगभग दुगने शरीर का बाज़ारी कुत्ता उस मुहल्ले में कहीं से आ गया और वो शेरा से लड़ने पर तैयार हो गया। दो एक बार शेरा से और उससे झड़प भी हुई। ऐसे मौक़ा पर कुतियाँ तो सब भाग जातीं और सारे बाज़ारी कुत्ते अपने गिरोह के नेता के साथ मिलकर शेरा पर हमला करते। धीरे-धीरे शेरा का अपने घर से बाहर निकलना ही न सिर्फ बंद हो गया बल्कि बाज़ारी कुत्तों का गिरोह उल्टे शेरा पर हमला करने के लिए उसके आँगन के अंदर आने लगा। जब इस प्रकार का हमला होता तो घर में कुत्तों के भूँकने की वजह से कान पड़ी आवाज़ न सुनाई देती। नौकर वग़ैरा जो क़रीब होते वो शेरा को छुड़ाने के लिए लपकते और बड़ी बुरी मुश्किलों से शेरा को उस के दुश्मनों से बचाते। शेरा कई- कई बार ज़ख़्मी हुआ और अब घर के अंदर छुपा बैठा रहता। बाज़ारी कुत्तों की पूरी जीत हो गई। एक दिन सवेरे शेरा अपने घर के आँगन में फिर रहा था कि बाहर वाले कुत्तों के गिरोह ने बड़े कुत्ते की अगुवाई में उस पर हमला किया। घर में सब सो रहे थे। मगर गुल और शोर इतना हुआ कि लोग जाग उठे। रईस साहिब जिनका कुत्ता था अंदर से बाहर निकल पड़े और इस हंगामे को

देखकर अपनी बंदूक़ उठा लाए। इन्होंने बड़े बाज़ारी कुत्ते पर निशाना लगा कर फ़ायर किया और उस का वहीं ख़ात्मा कर दिया, बाक़ी कुत्ते भाग गए। शेरा ज़ख़्मी हुआ अपने मालिक के क़दमों पर आकर लोटने लगा। कमीने, ज़लील बाज़ारी कुत्तों की कमर टूट गई। शरीफ़, ख़ानदानी, विलायती कुत्ता सलामत रह गया और फिर इस तरह से मज़े करने लगा।

इन्सानियत किसे कहते हैं ?

गोमती हज़ारों बरस से यूँ ही बहती चली जा रही है। बाढ़ आती हैं, आस-पास की आबादी को मिटा कर नदी फिर उसी तरह से धीरे-धीरे बहने लगती है। नदी के किनारे एक जगह एक छोटा सा मंदिर है। उस मंदिर की नीव मालूम होता है बालू पर थी। बालू को नदी के धारे ने काट दिया। मंदिर का एक हिस्सा झुक गया। अब मंदिर तिरछा हो गया। मगर अभी तक टिका हुआ है। थोड़े दिन बाद बिल्कुल गिर जाएगा। थोड़े दिन तक खण्डहर का निशान रहेगा। उसके बाद मंदिर जहाँ पहले था वहाँ से नदी बहने लगेगी।

आज त्योहार है, नहान का दिन है। सुब्ह-सवेरे से नदी के किनारे के मंदिरों और घाटों पर भीड़ है। लोग मंत्र पढ़ते हैं और डुबकियाँ लेते जाते हैं। नदी का पानी मैला मा'लूम होता है। लहरों

पर गेंदे और गुलाब के फूलों की पंखुड़ियाँ ऊपर नीचे होती हुई बहती चली जा रही हैं। कहीं- कहीं किनारों पर जा कर बहुत सी फूल पत्तियाँ, छोटे-छोटे लकड़ी के टुकड़े, पिए हुए सिगरेट, औरतों के कपड़ों से गिरी हुई सुनहरी चमकियाँ, मरी हुई मछली और इसी तरह की और चीज़ें इकट्ठे हो कर रुक गई हैं।

गोमती नदी, शेरा कुत्ता, मुर्दा मछली, आसमान पर बहते हुए बादल और ज़मीन पर सड़ती हुई लाशें, उन पर ख़ुदा अपनी रहमत का साया किए हुए है।

कल्लू मेहतर के जवान लड़के को साँप ने डस लिया। बरसात का मौसम था, वो आँगन में ज़मीन पर सो रहा था। सुबह होते हुए, उस की बाईं कुहनी के पास साँप ने काटा। उसको ख़बर तक नहीं हुई। पाँच बजे सुबह को वो उठा, हाथ पर उसने निशान देखे, कुछ तकलीफ़ महसूस की। अपनी माँ को उसने ये निशान दिखाए और ये सोच करके कि किसी कीड़े-मकोड़े के काटने का निशान है, वो झाड़ू देने में लीन हो गया। कल्लू मेहतर और उसके सारे बीवी-बच्चे एक घर में नौकर थे। उनकी पंद्रह रुपया महीना तनख़्वाह थी, रहने के लिए नौकरों की एक कोठरी थी जिसमें कल्लू, उस की बीवी, उसकी दो लड़कियाँ और उसका लड़का, सब के सब रहते थे। पंद्रह रुपया महीना, एक कोठरी और कभी-कभी

बचा हुआ जूठा खाना और फटे-पुराने कपड़े, कल्लू को जिन साहिब के यहाँ ये सब कुछ मिलता था वो उनको ख़ुदा से कम नहीं समझता था। कल्लू का लड़का दस-पंद्रह मिनट से ज़्यादा काम न कर सका, उसका सर घूमने लगा और उसके बदन भर में सरसराहाट महसूस होने लगी। छः बजते-बजते वो पलंग पर गिर कर एड़ीयाँ रगड़ने लगा। उसके मुँह से झाग निकलने लगे, उसकी आँखें पथरा गईं। ज़हर उसके रगों और ख़ून में घुल चुका था और मौत ने उसे अपने बेदर्द शिकंजे में जकड़ लिया। उसके माँ-बाप ने रोना शुरू किया। सारे घर में ख़बर फेल गई कि कल्लू के लड़के को साँप ने डस लिया।सब ने दवा व ईलाज की राय दी। कल्लू के मालिक के लड़के बहुत ज़्यादा हमदर्द और रहम दिल थे। वो ख़ुद कल्लू की कोठरी तक आए और कल्लू के लड़के को ख़ुद उन्होंने अपने हाथ से छुआ और दवा पिलाई, मगर कल्लू की अँधेरी कोठरी इतनी ज़्यादा गंदी थी और उसमें इतनी बदबू थी कि उसने से चार- पाँच मिनट भी न ठहरा गया। रहम दिली और हमदर्दी की आख़िर एक हद होती है। वो वापस आए अच्छी तरह नहाए, कपड़े बदल कर रूमाल में इतर लगा कर सूँघा तब जाकर उनकी तबीअत ठीक हुई।

रहा कल्लू का लड़का वो बदनसीब एक बजे के क़रीब

मर गया। उस कोठरी से रोने-पीटने की आवाज़ रात तक आती रही, जिसकी वजह से सारे घर में उदासी छा गई। अंतिम संस्कार के लिए कल्लू ने दस रुपये पेशगी लिये। रात को आठ-नौ बजे के क़रीब कल्लू के लड़के की लाश उठ गई।

हामिद साहिब अपनी रिश्ते की बहन सुल्ताना पर आशिक़ थे। हामिद साहिब ने सुल्ताना बेगम को सिर्फ दूर से देखा है। एक दो शब्दों के सिवा कभी आपस में उन से देर तक बातें नहीं हुईं। मगर इश्क़ की बिजली के लिए शब्दों की गुफ़्तगु की, जान-पहचान की क्या ज़रूरत ? हामिद साहब दिल ही दिल में जला करते, झूम-झूम कर शे'र पढ़ते, और कभी-कभी जब इश्क़ की अत्यधिक भावना होती तो ग़ज़ल लिख डालते और रात को नदी के किनारे जाकर चुप बैठते और ठंडी साँसें भरते। सिर्फ उनके दो गहरे दोस्त हामिद के इश्क़ का राज़ जानते थे। इस तरह अपने दिल की आग छुपाने पर वो हामिद की तारीफ़ किया करते थे।

शरीफ़ों का तरीका यही है-

देखना भी तो उन्हें दूर से देखा करना
शेवा ए इश्क़ नहीं हुस्न को रुस्वा करना !

हामिद हफ़्ते में एक बार से ज़्यादा शायद ही अपने चचा के घर जाते रहे हों। मगर जाने के एक दिन पहले से उनकी बेचैनी की हद न रहती। शायर ने ठीक कहा है:-

वादा ए वस्ल चूँ शवद नज़दीक
आतिश ए शौक़ तेज़ तर गर्दद[1]

उनके दोस्त जब हामिद की ये हालत देखते तो मुस्कुराते और यह का शे'र पढ़ते-

इश्क़ पर ज़ोर नहीं, है ये वो आतिश ग़ालिब
कि लगाए न लगे और बुझाए न बने

हामिद साहिब शर्माते, हँसते, रुठते होते, घबराते, दिल पर हाथ रखते और अपने दोस्तों से गुज़ारिश करते कि उन्हें छेड़ें नहीं।

सुल्ताना बेगम शरीफ़ज़ादी ठहरीं। इश्क़ या मुहब्बत के अल्फ़ाज़, इज़्ज़तदार बहू-बेटीयों की ज़बान तक आना ठीक नहीं हैं। उन्होंने अपने हामिद भाई से आँख मिलाकर शायद ही कभी बात की हो मगर जब वो हामिद भाई को अपने सामने घबराते और झेंपते

---

[1] फारसी भाषा की एक कहवत जिसका अर्थ है – ''मिलन का वादा जितना करीब आता है, लालसा की आग उतनी ही तेज़ होने लगी है''

देखतीं तो दिल ही दिल में सोचतीं कि शायद इश्क़ इसी चीज़ का नाम तो नहीं ! हामिद बेचारे को पाक मुहब्बत थी इसलिए अगर कभी सुल्ताना बेगम और वो कमरे में चंद मिनट के लिए अकेले रह भी जाते तो सिवाए इसके कि वो डरते-डरते बहुत दबी हुई एक ठंडी सांस लें और किसी 'नाजायज़' तरीक़े से इज़हार ए इश्क़ न करते, एक वक़्त तक इश्क़ का सिलसिला यूँ ही जारी रहा।

जब हामिद साहिब की नौकरी हो गई तो उनके दिल में शादी का ख़्याल आया। उनके माँ-बाप को भी इस की फ़िक्र हुई। सुल्ताना बेगम की माँ भी अपनी बच्ची के लिए वर की तलाश में थीं। हामिद साहिब ने बड़ी मुश्किल से अपनी माँ को इस बात से आगाह करवा दिया कि वो सुल्ताना बेगम से शादी करना चाहते हैं।

शादी का पैग़ाम भेजा गया। मगर सुल्ताना बेगम की माँ को हामिद मियाँ की माँ की सूरत से नफ़रत थी। हमेशा से उन दो औरतों में झगड़ा और दुश्मनी थी हामिद मियाँ की माँ अगर अच्छे से अच्छा कपड़ा और ज़ेवर भी पहने होतीं तब भी सुल्ताना बेगम की माँ, उन पर कोई न कोई तंज़ ज़रूर कसतीं, और उनके लिबास में कुछ ना कुछ ऐब ज़रूर निकालतीं। अगर एक के पास कोई ज़ेवर होता, जो दूसरे के पास न होता तो दूसरी बेगम ज़रूर अगली मुलाक़ात के मौक़े' पर उससे बेहतर उसी तरह का ज़ेवर पहने

होतीं। एक घर से निकाले हुए नोकर को दूसरे घर में ज़रूर जगह मिलती।

हामिद मियाँ के घर से जब शादी का पैग़ाम आया तो सुल्ताना बेगम की माँ ने हँस कर बात टाल दी। उन्होंने कोई साफ़ जवाब नहीं दिया। वो चारों तरफ़ नज़र दौड़ा रही थीं और चाहती थीं कि पहले सुल्ताना बेगम के लिए कोई वर ढूंढ लें उसके बाद हामिद मियाँ के रिश्ते को साफ़-साफ़ इंकार कर दें। हामिद मियाँ की माँ इन चालों को ख़ूब समझती थीं, उनके ग़ुस्सा की कोई हद न थी। जब ख़ानदान में अच्छा ख़ासा, सही होनहार, कमाता-खाता, नेक लड़का मौजूद हो तो सुल्ताना की घर से बाहर शादी करने का क्या मतलब ?

मगर हामिद का इश्क़ सच्चा था, उन्होंने अपनी माँ से कहा कि वो कोशिश किए जाएँ। यूँ ही एक वक़्त गुजर गया। कुछ ख़ुदा का करना ऐसा हुआ कि सुल्ताना बेगम की माँ को अपनी लड़की के लिए इस बीच में कोई अच्छा वर भी नहीं मिला। सुल्ताना बेगम की उम्र उन्नीस बरस की हो गई। उनकी माँ अब ज़्यादा इंतिज़ार न कर सकीं, आख़िरकार वो राज़ी हो गईं।

हामिद मियाँ की सुल्ताना बेगम से शादी हो गई। उनकी

शादी हुए दो बरस से कुछ ज़्यादा हो गए। आशिक़ की मुराद पूरी हुई। ख़ुदा के मेहरबानी से घर में दो बच्चे भी हैं।

एक ग़रीब औरत एक अँधेरी कोठरी में एक टूटी हुई झिलंगी चारपाई पर पड़ी कराह रही है। दर्द की तकलीफ़ इतनी है कि सांस नहीं ली जाती। रात का वक़्त है और सर्दी का मौसम। औरत के बच्चा होने वाला है।

एक अँधेरी रात में एक ग़रीब औरत, सबसे छुप कर चुपके से अपने ग़रीब आशिक़ से मिलने गई। जब उस औरत को मौक़ा मिलता वो उस मर्द से मिलने जाती।

इश्क़ की लज़्ज़त, मौत की तकलीफ़। ये पहाड़ जिनकी चोटियाँ नीले आसमान से जा कर टकराती हैं क्यों खड़े हैं ? समुंदर की लहरें।

घड़ी की टिक-टिक और पानी की एक-एक बूँद के टपकने की आवाज़ और ख़ामोश, और दिल की धड़कन, मुहब्बत की एक घड़ी, रगों में ख़ून के दौड़ने की आवाज़ सुनाई देती है। आँखें बातें करती हैं और सुनती हैं। सूअर, पाजी, उल्लू, हरामज़ादा... गालियाँ और सख़्त तेज़-धूप, जो ख़ाल को मालूम होता है झुलसा कर हड्डी तक पिघला देगी। एक ज़मींदार और उनका किसान,

जिसके पास लगान देने के रुपये नहीं। लड़के ने माँ को दूसरा ख़त भेजा है जिसमें उनसे ज़िद के साथ रुपये मांगे हैं, वकालत के इम्तिहान की फ़ीस चार दिन के अंदर जानी ज़रूर है। माँ अपने लड़के की शिक्षा के लिए किसान से रुपये वसूल कर रही है।

चारों तरफ़ साँप रेंग रहे हैं। काले-काले, लंबे फन उठा-उठा कर झूम रहे हैं। उनको कौन मारे ? किस चीज़ से मारें ?

बरसात में बादल की गरज और पहाड़ों की तन्हाई में एक झरने के बहने की आवाज़, लहलहाते हुए हरे-भरे खेत और बंदूक़ के फ़ायर की तड़ाकेदार आवाज़, उसके बाद एक ज़ख़्मी सारस की दर्दनाक क़ायँ, क़ायँ।

बादल नहीं आते

- अहमद अली

और बादल नहीं आते, निगोड़े बादल नहीं आते, गर्मी इस तड़ाखे की पड़ रही है कि तौबा-तौबा, तड़पती हुई मछली की तरह भुने जाते हैं। सूरज की गर्मी और धूप की तेजी। भट्टी भी क्या ऐसी गर्म होगी। पूरा नरक है। कभी देखी भी है ? नहीं देखी तो अब मजा चख लो। वह मुई चिलचिलाती हुई धूप है कि अपने होश में तो देखी नहीं। चील अंडा छोड़ती है। हिरन तो काले हो गए होंगे। भई कोई पंखा ही को तेज कर दो। सुकून तो हो जाता है।

खामोशी, खामोशी, सुस्ती और पस्ती, पस्ती और मस्ती। बचपन में सुनते थे कि हिमालय पर्वत के पहलू में एक बड़ी गुफा है। ऊँचे आसमान से बातें करते हुए पहाड़। सख्त और घने। एक पहलू में एक सूखी, बड़ी, चौड़ी और अँधेरी गुफा, उसके मुँह पर एक बड़ी चट्टान रखी रहती है। इस गुफा में बादल बंद रहते हैं। सफेद, भूरी और काली गायें बंद रहती हैं। क्या... क्या भई मूर्ख वाले विचार होते हैं। अज्ञानता की भी कोई सीमा है। कितना ही समझाओ समझ में नहीं आता। एक ही लाठी से बैल और बकरियों को हाँकते हो। हम कोई कुत्ते हैं कि भौंके चले जाएँ ? भों ! भों ! भों ! कोई सुनता तक नहीं। अक्ल पर पत्थर पड़ गए है। ऐ कोई तो बताओ कि अक्ल बड़ी या भैंस। भैंस बड़ी है भैंस।भैंस अक्ल की दुम में नम्दा। ज्यादा कहो डंडा लेकर पिल पड़े। मौलवियों के भी कहीं अक्ल होती है ? अक्ल, अक्ल, सूरत न शक्ल। भाड़ में से निकल। दाढ़ी ने दिल पर कालिख छा रखी है। दिमाग को इस्तेमाल नहीं करते। समझ को छप्पर पर रख दिया। ताक़ में से किताब उतारी, हिल-हिल कर पढ़ रहे हैं, झुक-झुक कर पढ़ रहे हैं। वाह मियाँ मिट्ठू वाह ! खूब बोले ! पढ़ो मियाँ मिट्ठू, पढ़ो हक अल्लाह-पाक जात अल्लाह, पाक नबी रसूल अल्लाह, नबी जी भेजो। या अल्लाह भेज! मौलवी साहब को बच्चे की तमन्ना है। सख्त आरजू है। न मालूम

क्या गुनाह किया है जिसकी सज़ा मिल रही है। घबराइए नहीं। दो तावीज़ देता हूँ। 'हकीर-फकीर, नाचीज ओ गुनाहगार हूँ[1]" लेकिन अल्लाह का क़ुरआन है। अल्लाह ने चाहा तो मुराद पूरी होगी। इशा[2] के बाद नहा कर, सात बार दुरुद शरीफ[3] पढ़ कर लोबान[4] की धूनी के साथ संभोग के समय नाभि के नीचे बाँध दीजिएगा। दूसरा पानी में घोल कर एक सुराही या किसी बरतन में रख लीजिएगा और सात दिनों तक आब-ए-ज़मज़म[5] मिला कर निहार मुँह पी लीजिएगा। अगर ख़ुदा ने चाहा तो मुराद जरूर पूरी होगी !

यह दक्षिणा है।

'ला हौला वला क़ुव्वता इल्ला बिल्लाहि अलिउल ज़ीम'[6]

तुमको शर्म नहीं आती ? समझते हो कि अल्लाह का क़ुरआन खरीदा जा सकता है ? ख़ुदा को भी मोल लोगे ? मैं

---

[1] तुच्छ,अल्पज्ञानी और निर्धन।

[2] रात की नमाज़

[3] मोहम्मद स० और उनके परिवार पर दुआ व सलाम पढना।

[4] सुगंधित गोंद जिसे जलाने पर हवा सुगंधित हो जाती है।

[5]पवित्र जल जो मक्का शहर में निकलता है।

[6]एक अरबी वाक्य जिसका अर्थ है अल्लाह के अतिरिक्त कोई भी सर्वशक्तिमान नहीं है। किसी वस्तु के प्रति घृणा भाव व्यक्त करने के लिए बोला जाता है।

दक्षिणा-वक्षिणा नहीं लेता। जाओ किसी टट-पूंज्या के पास जाओ। भाग यहाँ से ! निकल ! साहब बड़ी ग़लती हुई, माफ़ी चाहता हूँ। फ़िर ऐसी गुस्ताखी न होगी। अच्छा खैर ! जा, लेकिन बात याद रखना नौचंदी जुमेरात[1] को बड़े पीर साहब की नियाज[2] दिलवा देना। सवा रुपया और पाव भर मोतियाँ के फूल हरे-भरे साहब के मजार[3] पर चढ़ा देना। का-आ-री सो आ जीब आ-आ आपकी दस्ता आरे मु बा आ रक में खा तन गा आ आ। मौलवी साहब खाई। हाँ बेटा खूब खाई। अजि मौलवी साहब खाई। हाँ-हाँ बेटा ख़ूब खाई। नहीं मौलवी साहब खाई ! अबे कह तो दिया खाई, हाँ खूब खाई। आओ ब!! अंग्रेजों को ख़ुदा बरबाद करे। अंग्रेजी पढ़ा-पढ़ा कर अधर्मी बना डाला। नपुंसक बना डाला। मर्दानगी की नाक काट कर ले गए, न नरक का डर, न स्वर्ग की तमन्ना। पढ़ा-पढ़ाया सब मिट्टी में मिला दिया। हमारा मजाक उड़ाते हैं, पाक ख़ुदा पर हँसते हैं। जब आग में जलेंगे तो.....

और एक साधू उस गुफा का मुँह बरसात में खोल देता

---

[1]चन्द्र दर्शन (चाँद की तरीख)का प्रथम ब्रहस्पतिवार।

[2] एक सूफी संत जिनको कई नामों जैसे- बड़े पीर साहब, गौस पाक इत्यादि नामों से जाना जाता है। आपका मूल नाम ‘अब्दुल क़दीर जिलानी’ है तथा आपकी दरगाह/मज़ार बग़दाद(इराक़)में है।के नाम का चढ़ावा,प्रसाद।

[3] एक सूफी संत, जिनकी मज़ार/दरगाह दिल्ली जामा मस्जिद के पास स्थित है।

है। बादल भड़-भड़ उड़ निकलते हैं। सुन-सुन सखी पंखी का ब्याह होता था........ तातल ममूला नाचती थी....... बुलबुल तो खूब बोला पोदना सताई...... तीतरी भंभेरी सब को कि नाल तेरी....... पर बिल्ली जो नाइन आई सारी सबा भगाई। भाड़-भाड़ सब बारात उड़ गई। अब तो हवा उखड़ गई, हवा। अभी देखो क्या होता है। ख़ुदा सीधा रास्ता दिखाए। सच है, कयामत की सब निशानी मौजूद हैं। आग उगलता हुआ साँप। आपसी फूट, झगड़े, लड़ाइयाँ, मजहब और ख़ुदा का अपमान। जमीन का गिरोह बदल रहा है। जब यूनान का तख़्तापलट हुआ था तो यही सब लक्षण मौजूद थे। या अल्लाह रहम कर ! यह जाहिल हैं। यह नहीं समझते कि क्या कह रहे हैं। तू दुनियाँ का मालिक है। इनको माफ़ कर।

बादल क्यों नहीं आते ? और जिंदगी बवाल है। बवाल, बवाल। लंबे-लंबे काले-काले बाल। एक बेकार की लादी लदी हुई। आखिर हम भी मर्दों की तरह क्यों नहीं कटवा सकते ? छोटे-छोटे बालों से सर कैसा हल्का मालूम होता होगा। ख़ुदा माफ़ करे, अब्बा जान के तो छोटे-छोटे बाल थे। एक बार ऐसी ही गर्मी पड़ी तो सर भी बनवा लिया था। मैंने और साबरा ने खूब सर सहलाया। काश कि हमारे बाल भी कटने होते। गुद्दी जली जाती है। झुलसी जाती है। उस पर भी बाल नहीं कटवा सकते। ख़ानदान वालों की क्या

बड़ी नाक है, हम जो बाल कटवा लेंगे तो उनकी नाक कट जाएगी। अगर मैं कहीं लड़का होती तो छुरी से काट डालती, जड़ से उड़ा डालती। जब नाक ही न रहती तो कटने का डर कहाँ ?

ख़ुदा गंजे को नाख़ून ही नहीं देता। ज़ख़्म के भरने तलक नाख़ून न बढ़ आएँगे क्या ? ज़ख़्म तो भर आया लेकिन नाख़ून ही नहीं। जो ज़ख़्म-ज़ख़्म....... रहम, और अर-रहमा-निर्रहीम[1]....... क्या ख़ुदा भी रहमों को मिला कर बना है ? आखिर हम ही में रहम क्यों पैदा किया ? औरत कमबख़्त मारी भी क्या जान है, चिचड़ी से बेकार। काम करे काज करें, सीना-पिरोना, खाना-पकाना, सुबह से रात तक जले पाँव की बिल्ली की तरह इधर-उधर फिरना। उस पर यह कि बच्चे जनना। जी चाहे या न चाहे, जब मियाँ का जी चाहा हाथ पकड़ के खींच लिया। इधर आओ मेरी जानी, मेरी प्यारी। तुम्हारे नख़रे में गर्म मसाला। देखो तो कमरे में कैसी ठंडक है, मेरे कलेजे की ठंडक ! वरे आओ। हटो परे। तुम पर हर वक्त कमबख्त शैतान सवार रहता है न दिन देखो, न रात। हाय, मार डालो, कटारी मारो ना। हाथ मरोड़ डाला-तोड़ डाला। कहाँ भागी जाती हो ? सीने से चिमट के लेट जाओ ! देखो कटारी का मज़ा चख लो। वही दूधों पर हाथ चलने लगे। सख्त-सख्त उंगलियों से मसल डाला-वसल

---

[1] एक अरबी वाक्य जिसका अर्थ है-अल्लाह बहुत दयालु है।

डाला। कमबख्त ने घुंडी को किस जोर से दबाया कि बिलबिला भी न सकी। मुआ जवाना मरे। कोठे वालियों के साथ भी कोई ऐसा बर्ताव न करता होगा। कमजोर जान लेट गई कि सारा गर्मी का गुस्सा मुझ ही पर उतरा। मुर्दे की तरह क्यों पड़ी हो ! क्या जान नहीं? जोर लगाओ। प्यारी, पी आरी, ज...अ...आ...नी। और हम हैं कि कुछ कर ही नहीं सकते। हम क्यों नहीं कुछ कर सकते ? अगर अपना रुपया होता तो ये सब ज़िल्लत क्यों सहनी पड़ती। जिस वक्त जो जी चाहता करते। कमाने की इजाज़त भी तो नहीं। पर्दे में पड़े-पड़े सड़ते हैं। लौंडियों से बेकार जिंदगी है। जानवरों से भी गए-गुजरे हुए पिंजरे में पड़े हैं, क़ैद किए पड़े हैं। पर भी फड़फड़ाने की गुंजाइश नहीं। हमारी जिंदगी ही क्या है ? बुझा दिया तो बुझ गए, जला दिया तो जल रहे हैं। हर वक्त जला करते हैं। जलने के अलावा और भी कुछ हमारी किस्मत में है? हुक्म पूरा करते जाएँ बस ! मर्द मुए सारे में जूतियाँ चटखाते फिरते हैं। कहीं बैठ कर हुक्का गुड़गुड़ाया, कहीं गप्पें कीं, कहीं शतरंज, कहीं ताश। रात को कुछ नहीं तो चावड़ी चले गए। गाना सुनने का बहाना ! लेकिन फिर सुबह नहाना कैसा? और कह-कह कर हमें जलाना। कहीं जलाने से भी तो नहीं चुकते। लाख-लाख आँसू बहाते हैं। मुई आग ऐसी चौबीसो घड़ी की लगी रहती है कि ज़रा बुझने का नाम नहीं लेती। मौत भी तो नहीं आती।

हिंदुओं की जिंदगी कहीं हम से अच्छी है। आजादी तो है। ईसाइयों का तो क्या कहना। जो जी में आता है करती हैं। नाच नाचें, तस्वीरें देखें, बाल कटाएँ, लिखने वाला चैन लिखता है..........

नहीं पता किस घड़ी हमारा जन्म हुआ जो मुसलमान के घर में जन्म लिया। आग लगे ऐसे मजहब को। मजहब, मजहब, मजहब, रूह की तसल्ली मर्दों की तसल्ली है। औरत बेचारी को क्या ? पाँच उंगली भर दाढ़ी रख के बड़े मुसलमान बनते हैं। टट्टी की आड़ में शिकार[1] करते हैं। हमारे तो जैसे जान तलक नहीं। आज़ादी के लिए तो क़हक़हा-दीवार[2] है। अब्बा जान ने किस मुसीबत से स्कूल में दाखिल किया था। मुश्किल से आठवीं तक पहुँची थी कि ख़ुदाबख्शें दुनिया से चले गए। सब ने ही तो फौरन स्कूल से नाम कटा दिया और इस मोटे-मुस्टन्डे, दाढ़ी वाले के साथ नत्थी कर दिया। मुवा शैतान है। औरत की आजादी तो आजादी, औरत का जवाब तक देना गवारा नहीं करता।

क्या समुंदर सूख गए, जो बादल नहीं आते ? सो गए। समुंदर भी सूख समंदर, सात समंदर पार से आए, हमारी भी लुटिया

---

[1] छुप कर अनुचित कार्य करना

[2] चीन की एक पारंपरिक सीसे और तांबे की दीवार।

डूब गई, गुडुप- गुडुप - गुडुप गोते लगा रहे हैं ! अपने ही खून में नहा रहे हैं। धूप तो इतनी तेज है, भाप भी नहीं बनती। काहे की भाप बने, खून तो ख़ुश्क हो गया, जल कर राख हो गया। लेकिन क्या सचमुच बादल भाप के बनते हैं ? हम तो सुना करते थे कि बादल स्पंज की तरह होते हैं। हवा में तैरा करते हैं। जब गर्मी बहुत ज़्यादा पड़ी, प्यास के मारे समुंदर के किनारे उतर पड़ते हैं। खूब पानी पीते हैं और फिर हवा में उड़ जाते हैं। शायद हमारी सरकार के जहाजी बेड़े से डर के उड़ जाते हैं और तोपों के खौफ़ से मूतने लगते हैं। तुल-तुल मूतने लगते हैं। जो कुछ भी स्कूल में पढ़ाते हैं झूठ बकते हैं। बादल सचमुच भाप के नहीं होते। भूगोल गलत, अंग्रेजों का डर सही, सही। यही बात है। ओहो आज समझ में आया। क्या समझे ? जहाजी बेड़ा और तोप। लेकिन अफ़ग़ान भी क्या तपक मारता है। चट्टानों की आड़ में छिपा रहता है। जहाँ दुश्मन को देखा एक आँखें भींच, शायद दोनों आँखें बंद कर लेता है। घोड़ा दबा दिया। ठाँय ! टप से जिंदा जान मुर्दे की तरह गिर पड़ी। खूब ख़ूब मारा ! लेकिन अफ़ग़ान तो पैदल चलता है। मगर हवाई जहाज को एक गोली से गिरा लेता है। हमारे पास मोटर छोड़ घोड़ा गाड़ी भी नहीं। हम क्या करेंगे ? चलो जलियांवाला बाग की सैर कर आएँ। मगर जाएँगे काहे में ? हम बताएँ सरकंडे की गाड़ी दो बैल जोते जाएँ। वाह !

भाई वाह ! खूब सुनाई। इतने सारे आदमी और सरकंडे की गाड़ी। पागल है भई, पागल, पेरी है बे लमड्डू, पेरी है। सफेदे की पेरी है। वह काटा ! यूँ नहीं तो यूँ सही। हुश-हुश मेरे कान में घुस। सबके कान में घुस लेंगे। पागल है भई, पागल है। वह काटा ! यही तो मुसीबत है, सुनते तक नहीं। इस कान से सुना, उस कान से निकाल दिया। जूँ तक नहीं चलती। घड़ा भी क्या इतना चिकना होगा। मिट्टी में पड़े रौंदते हैं। सूरत तक को नहीं सँभालते। क्या क्या शे'र था ? क्या ? हमने अपनी सूरत बिगाड़ ली, उनको तस्वीर बनानी आती हैं। क्या था ? एक हम हैं। हाँ, हम ! यह ही हम जिनको अपनी सूरत का एहसास नहीं। काले भुजंगे, मैले-कुचैले, लंगोटी में मस्त हैं। भाई बंदों में किसी ने काई बात कह दी, लड़ने-मरने पर तैयार और दूसरे जो गला काट डालते हैं। उसका कुछ भी नहीं। जूते खाते हैं, लातें सहते हैं। गालियाँ सुनते हैं और फिर वही लौंडों की सी बात, अब के तो मार लिया। चाट ! चाट ! भें, भें, भें। देखो बी अम्मा चुन्नु का बच्चा नहीं मानता, जबसे बरोबर मारे जा रहा है। उसको समझा लो, नहीं तो उस हरामजादे की...... माश अल्लाह-चश्मेबद्दूर-चश्मेबन्दूक, क्या मीठी गाली दी है। मुँह चूम ले मुँह। जबान गुद्दी के पीछे से खींच के निकाल डाले, ऐसा चाँटा मारे कि सारा पजौड़ापन दूर हो जाये। कुत्ते की तरह मारते हैं, हड्डी दिखा कर मारते

हैं, अजी पास बुला के मारते हैं, घेर के मारते हैं, घार के मारते हैं, प्यार करके मारते हैं, दुलार करके मारते हैं और तो और मार करके मारते हैं। और हम हैं कि कुत्ते की ज़ात फिर उनके चूतड़ों में घुसे जाते हैं। अफसोस तो यह है कि गू तक नहीं मिलता। आख़ थू.....। काले कुत्ते का गू। लानत तुम जैसे लोगों पर। बस बे छोटू ? बस ! चुन्नू की गाली सह ली। मार ! मार ! देखता क्या है ? लपक के दे दबा के हाथ ! मार ! और राजा मारी पोदनी हम बीर बसावन जाएँ। आपकी सूरत तो दखो। क्या पिद्दी का शोरबा। हम बीर बसावन जाएँ। वाह मेरे सींख के पहलवान, वाह, कोई तंज़ कहो। ख़ुदा लगती कहो। हम बैर बसावन जाएँ। हाँ, बेर कहते तो एक बात भी थी। मियाँ शेखपुर के बहुत अच्छे होते हैं। कभी सहारनपुर के बेरों का भी नाम सुना है ? अजि साहब बैल होंगे, बैल, जी हाँ, ठीक कहा, सही, बैल ही तो थे। हम बैर बसावन जाएँ। सरकंडों की गाड़ी दो बैल जोते जाएँ............ और ? राजा मारी पोदनी, हम बैर बसावन जाएँ। वाह मियाँ पोदने बड़ी हिम्मत की। मिट्टी का शेर है न ? सरकंडों की गाड़ी में बैठेगा, बैलों पर, कि राजा मारी पोदनी, हम बैर बसावन जाएँ।

महावटों की एक रात

-अहमद अली

गड़ गड़ ! गड़ड़ड़ ! इलाही ख़ैर[1] ! मालूम होता है कि आसमान टूट पड़ेगा। कहीं छत तो नहीं गिर रही। गड़ड़ड़ड़ ! उस के साथ ही टूटे हुए किवाड़ों की झिर्रियाँ एक तड़पती हुई रोशनी से चमक उठीं। हवा के एक तेज़ झोंके ने सारी इमारत को हिला कर रख दिया। सू-सू सूऊऊऊ ! क्या सर्दी है ! बहुत सर्दी है। बर्फ़ जमी जाती है, कपकपी है कि सारे जिस्म को तोड़े डालती है।

---

[1]ईश्वर सब सही रखे, किसी परेशानी या विपत्ति के अंदेशा के समय कहा जाने वाला वाक्य।

एक छोटे से मकान 24x24 फिट और उसमें भी आधे से ज़्यादा में एक तंग दालान और उसके पीछे एक पतला सा कमरा, नीचा और अंधेरा। कोई फ़र्श नहीं। कुछ फटे पुराने बोरिये और टाट ज़मीन पर बिछे हैं जो धूल और सीलन से चिप-चिप कर रहे हैं। कोनों में संदूकचियों और गूदड़ का एक ढेर है। एक अकेला लकड़ी का टूटा हुआ संदूक़, उस पर भी मिट्टी के बर्तन जो सालो साल के प्रयोग से काले हो गए हैं, और टूटते टूटते आधे पौने रह गए हैं। उनमें एक ताँबे की पतीली भी है जिसके किनारे झड़ चुके हैं। बरसों से क़लई तक नहीं हुई और घिसते घिसते तला जवाब देने के क़रीब है।

छत है की कड़ियाँ रह गईं हैं और उस पर बारिश ! या अल्लाह क्या महावटें अब के ऐसी बरसेंगी कि जैसे कि उनको फिर बरसना ही नहीं।अब तो रोक दो। कहाँ जाऊँ क्या करूँ। इससे तो मौत ही आ जाए ! तू ने ग़रीब ही क्यों बनाया। या अच्छे दिन ही न दिखाये होते या ये हालत है कि लेटने को जगह नहीं। छत छलनी की तरह टपके जाती है। बिल्ली के बच्चों की तरह सब कोने झाँक लिए लेकिन चैन कहाँ। मेरा तो ख़ैर कुछ नहीं, अभागी बच्चों की मुसीबत है। ना मालूम सो भी कैसे गए हैं।

सर्दी है कि उफ़ ! बोटी बोटी काँपी जाती है ! और इस

पर एक लिहाफ़ और चार लोग ! ए मेरे अल्लाह ज़रा तू रहम कर ! या वो ज़माना था कि महल थे, नौकर थे, फ़र्श और पलंग थे। आह! वो मेरा कमरा ! एक छप्पर खट सुनहरी पर्दों से सजी धजीं, मख़मल की चादरें और सुन्बुल[1] के तकिए। क्या नरम नरम बिस्तर था कि लेटने से नींद आ जाये और लिहाफ़ आह ! रेशमी छींट का और इस पर सच्चे ठप्पे की गोट। सेविकाएँ खड़ी हैं, बीवी सर दबाऊँ, बीवी पैर दबाऊँ ? कोई तेल डाल रही है कोई हाथ मल रही है। गुदगुदा गुदगुदा बिस्तरा, ऊपर से ये सब चोंचले, नींद है कि तारे कपड़े पहने सामने खड़े हैं।

हरे शीशों पर नीली, लाल और नारंगी परछाई, बड़े बड़े हश्त पहल जवाहरात के साबूत डले जगमग-जगमग कर रहे हैं। दस्तरख़्वान पर चाँदी की थालियाँ, एक झिलमिलाहट, कोरमा, पुलाव, बिरयानी, मुतंजन, बाक़िर ख़ानियाँ, मीठे टुकड़े........

एक बाग़ पेड़ों से घिरा हुआ जिनके हरे पत्तों पर तारों की चमक ओस में और चमका रही है। वाह वाह, क्या ख़ुशनुमा फल हैं। आम मुँह लाल, कलेजा बाल। सेब कैसे ख़ूबसूरत हैं। अंधेरे अंधेरे, पर्दों में लाल और गुलाबी और पिस्तई लटके हुए हैं। डालियों

---

[1] एक सुगंधित घास

समेत झुके हुए हैं। अरे बेर तो देखो, कैसे मोटे मोटे और हलके बैगनी हैं, शेखुपुरे[1] के से हैं। एक नहर, अँधेरी रात में चांदी की चादर बिछी हुई है। शायद दूध है, कहीं जन्नत तो नहीं ? एक कश्ती बहुत धीमें से, बत्तखों की सी नज़ाकत से बहती हुई, जल्दी आओ, जल्दी बैठ जाओ, जन्नत की सैर कराएँ।

क्या बीवियाँ हैं, पाक साफ़, बिलोर[2] जैसी गोरी। चमकीले कपड़े, नज़ाकत ऐसी जैसी हवा की। कश्ती बहते हुए चिराग़ की तरह पानी पर चली जा रही है। दोनों तरफ़ खुले खुले मैदान जो हरी हरी घांस से ढके हुए हैं। बीच बीच में फूलों की रंगीन कियारियाँ और फलों के पेड़ दिखाई देते हैं। जानवर चहचहा रहे हैं, शोर मचा रहे हैं। तो क्या ये जन्नत है ? क्या हम जन्नत में हैं ?

हाँ जन्नत, ख़ुदा के नेक और प्यारे बंदों की जगह। कश्ती कुछ छोटे छोटे सीप की तरह चमकदार और गुम्बदों की तरह गोल मकानों के सामने से गुजरी। क्या ख़ूबसूरती और क्या चमक है। निगाह तक नहीं ठहरती, टपकते तो न होंगे ? क्या उनमें मुझको भी

---

[1] दिल्ली के पास एक कस्बा जहाँ के बेर मशहूर हैं।

[2] एक प्रकार का स्वच्छ सफ़ेद पत्थर जो शीशे के समान पारदर्शी होता है। क्रिस्टल

जगह मिलेगी। ख़ुदा के नेक और सच्चे बंदों के लिए हैं। पाक बंदों के लिए।

पेट में खिचाव, कलेजे में एक तनाव, अंतड़ियां बल खा रही हैं। ऐसा मालूम हुआ कि गोद में किसी ने कुछ रख दिया। ये एक मोती की तरह सफ़ैद और सीप की तरह बड़ा फल था। डंडी में दो हरे हरे पत्ते भी लगे हुए थे। ऐसा मालूम होता था कि जैसे अभी अभी डाल से तोड़ा गया हो। अहा, क्या मज़ा है ! काश कि और होते। गोद भरी हुई थी। कश्ती दो पहाड़ों के बीच से गुज़र रही थी। एक मोड़ था, थोड़ी देर में जब मोड़ ख़त्म हुआ तो अचानक दूर के एक ऊँचे पहाड़ से बिजली से ज़्यादा तेज़ रोशनी की लपटें आग की तरह उठती हुई दिखाई देने लगीं। आँखें चका-चौंद हो कर बंद हो गईं। अंधेरा घुप था। एक शोर की आवाज़ गरज से भी ज़्यादा तेज़ आने लगी, सूर फूँक रहा था। कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी। कश्ती वाली बीवियाँ इधर उधर दौड़ रही थीं। इतने में फिर एक तेज़ रोशनी हुई। सूरज गिर रहा था। अचानक क़रीब ही से एक ऐसी आवाज़ आई जैसे कोई ज्वालामुखी पहाड़ फट रहा हो। एक भूकंप आ गया। कश्ती लौट गई और सब नदी के अंदर डूब रहे थे।

गड़ड़ड़ड़! टप टप की आवाज़ चारों तरफ़ से आ रही थी। अम्माँ, अम्माँ ! अभी कानों में सनसनाहट बाक़ी थी, दिल गज़ों उछल

रहा था, क्या है बेटा ? क्या है ? डर लग रहा है। ये आवाज़ किस की थी ? कुछ नहीं बेटा, गरज है। तीनों बच्चे चिमटे हुए एक कोने में सिकुड़े पड़े थे। टपका उनके लिहाफ़ तक पहुँच चुका था। मरयम का कोना ख़ूब भीग गया था, बे-चारी ने उठकर बच्चों को और परे सरकाया। अब वो बिलकुल दीवार के बराबर पहुँच गए थे। या अल्लाह अगर ये टपका इसी तरह बढ़ता रहा तो अब के भीगना ही पड़ेगा। अम्मां ! सर्दी लग रही है। सिद्दीक़ा उस के बराबर लेटी हुई थी। उसने उसी को चिमटा के लिटा दिया। रूई नहीं तो दुई ही सही। उधर दोनों लड़के चिमटे पड़े थे। लिपटे हुए जैसे साँप पेड़ से लिपट जाता है। या अल्लाह रहम कर, ख़ुदा ग़रीबों के साथ होता है, उनकी मदद करता है, उनकी आह सुन लेता है, क्या मैं ग़रीब भी नहीं ? ख़ुदा सुनता क्यों नहीं ? है भी या नहीं ? आख़िर है क्या ? जो कुछ भी है बड़ा जल्लाद है और फ़िर बड़ा बेइंसाफ है। कोई अमीर क्यों? कोई ग़रीब क्यों ? उसकी मर्ज़ी है अच्छी मर्ज़ी है। कोई जाड़े में ऐंठे, लेटने को पलंग तक न हों। ओढ़ने को कपड़े तक न हों। सर्दी खाईं। बारिशें सहीं। फ़ाक़े करें और मौत भी न आए। कोई हैं कि लाखों वाले हैं, हर तरह का सामान है, किसी बात की तकलीफ़ नहीं। अगर वो थोड़ा सा ही हमको दे दें तो उनका किया जाएगा ? ग़रीबों की जानें पल जाएँगी लेकिन उनको क्या पड़ी ? किस की बकरी

और कौन डाले घास ? हमको बनाया किस ने ? अल्लाह ने ? तो फिर हमारी परवाह क्यों नहीं करता ? किस लिए बनाया ? ग़म सहने और मुसीबत उठाने के लिए। अरे क्या इन्साफ़ है ? वो क्यों अमीर हैं ? हम क्यों नहीं ? प्रलोक में इस का बदला मिलेगा। ज़रूरत तो अब है। बुख़ार तो इस वक़्त चढ़ा हुआ है और दवा दस बरस बाद की मिलेगी ? बचो ऐसे प्रलोक से, जब की जब भुगत लेंगे, अब तो कुछ हो। ख़ुदा ? बस एक बहाना, बस एक धोखा है। ग़रीबी में गरीब रहने की तसल्ली। मायूसी में मायूस की उम्मीद। मुसीबत में तकलीफ से सब्र के साथ रहने का लगाओ। ख़ुदा सिर्फ एक धोके की टट्टी है। और मज़हब है कि वो भी यही सिखाता है, यही पढ़ता है, फिर कहते हैं कि इल्म का ख़ज़ाना है और फिर कंगाली का बहाना है। बेवक़ूफ़ों की अक़्ल है, आगे बढ़ते हुओं, ऊपर चढ़ते हुओं को पीछे खींचता है। तरक़्क़ी के रास्ते में एक रुकावट है, ग़रीब रहो। ग़रीबी में ही ख़ुदा मिलता है। हमने तो पाया नहीं, अमीरों से क्यों नहीं रुपया दिलवा देता ? दौलत का क्या होगा, सिर्फ इतना चाहिए कि वक़्त कट जाए। आख़िर अमीर ही दौलत का क्या करते हैं ? तहख़ानों में पड़ी ज़ंग खाती है। किसी का ख़र्च भी ठीक नहीं, जो है बेतुकेपन से उठता है, लुटाता है, सरकार ही कुछ क्यों नहीं करती ? और नहीं तो सबको बराबर रुपया दिला दे। और अगर

इतना नहीं तो आधा ही सिर्फ हमको मिल जाये। लेकिन सरकार की जूती को क्या ज़रूरत पड़ी जो अपनी जान परेशान करें। उस के ख़ज़ाने भरे पड़े हैं। बैठे बिठाए रुपया मिल जाता है। उस को क्या, मौत तो हमारी है, जब पड़े तो जाने, ऊँट जब पहाड़ के नीचे आता है तो बिलबिलाता है। अभी तो...

अम्माँ !

हाँ बेटा क्या है ?

अम्माँ भूक लगी है

भूक ! मरियम के जिस्म में सनसनी दौड़ गई। या ख़ुदा क्या करूँ ? बेचारे बच्चे......

मियाँ ये भी कोई भूक का वक़्त है ? भूक न हुई दीवानी हो गई, सो जाओ, सुबह होते ही खाना।

नहीं अम्माँ मैं तो अभी खाऊंगा, बड़े ज़ोर की भूक लगी है।

नहीं बेटा ये कोई वक़्त नहीं है लेट जाओ। वो देखो कड़क हुई। बच्चा बेचारा कड़क की आवाज़ सुनते ही सहम कर लेट गया। कहाँ से लाऊँ ? क्या करूँ ? बारिश ने तो दिन-भर निकलने भी न

दिया कि किसी के हाँ जाती और थोड़ा बहुत जो कुछ मिल जाता ला कर देती। बे-चारी फ़य्याज़ बेगम के यहाँ भी जाना न हुआ, वो ही बेचारी बचा खुचा जो कुछ होता है बराबर दे देती हैं। अब जो अगर कल भी कहीं से काम न मिला तो क्या होगा ? आख़िर कहाँ तक माँग-माँग के लाऊँ, देते-देते भी तो लोग उकता जाते होंगे।

अम्माँ भूक लगी है, देखो तो पेट ख़ाली पड़ा है। कल दिन से नहीं खाया और नींद बिलकुल नहीं आती, कलेजा मुँह को आ रहा है।

बे-चारी आख़िरकार उठी और दिये की मद्धम रोशनी में टटोलती हुई संदूक़ की तरफ़ गई कि अगर कुछ मिल जाये तो बच्चे को दे। आख़िर वो सिर्फ पाँच बरस की जान है। काश ! मैंने इन बच्चों को जना ही न होता। मैं तो मर गिर के काट ही लेती लेकिन उनकी तकलीफ़ नहीं देखी जाती। एक सूखी हुई रोटी एक हंडिया में पड़ी मिली, उस को तोड़ कर पानी में भिगोया और बच्चे के सामने ला रखी। पेट बड़ी बुरी बला है। बेचारा कुत्ते की तरह चिमट गया। थोड़ी खाने के बाद बोला, अम्माँ ज़रा सा गुड़ हो तो दे दो।

मरियम फिर खड़ी हो गई कि शायद गुड़ की डली भी मिल जाये। अचानक से एक छोटी सी डली मिल गई। बच्चे ने जो

हो सका खाया। दो-चार निवाले जो बचे थे मरियम अपने आपको रोक न सकी और थोड़ा थोड़ा कर के खा गई...

कड़क और चमक रुक चुकी थी। बारिश भी कम हो गई थी। फिर सिद्दीक़ा से चिमट कर लेट गई और अकेली थी।

आह ! काश कि वो होते ! आह, वो होते। वो वो वो, रात को आते कुछ न कुछ लिये चले आते हैं। क्या लाये हो ? हलवा सोहन है। वो ही बेकार पपड़ी का होगा, तुम जानते हो कि मुझे हब्शी पसंद है। लो ! फिर चीख़ने लगीं, देखा तो होता। आह, वो झगड़े और वो मिलाप, सावन और भादों के मिलाप, क्या दिन थे, अब तो एक ख़्वाब हैं। फिर चांदनी रातों में फूल वालों की सैर। आह ! वो बिस्तर, क्या महक थी दिमाग़ फटा जाता था, और अब तो वो बासी फूल भी नहीं, मुरझाए हुए फूल भी नहीं। ए काश वो होते, वो टांगें एक हरा-भरा पेड़, गोश्त और हड्डी और गूदे का। उसका रस ख़ून से ज़्यादा गर्म और उसकी खाल गोश्त से ज़्यादा नर्म। एक तना हल्का और मज़बूत और दो डालें और एक तना, एक दूसरे में लिपटी हुईं। एक दूसरे से चिम्टी हुई, एक दूसरे में एक दूसरे की रूह, जुड़ी हुई बल खाई हुई, एक दूसरे की जान और एक एक दूसरे में एक तीसरी रूह की उम्मीद, एक पूरी ज़िंदगी का ख़ज़ाना, एक लम्हा की दौलत पर न होने में होने की ताक़त। आह ! वो टांगें, दो नाग बल खाए

हुए, ओस से भीगी हुई घास पर मस्त पड़े हैं। एक सूई के नाके में धागा और दो उंगलियाँ, तेज़ तेज़ चलती हुई, सपाटे भर्ती हुई, नर्म नर्म रोएँदार मख़मल पर गुलकारियाँ कर रही हैं। एक मकड़ी अपनी जगह पर जाला बुन रही है। ऊपर नीचे हो रही है। कुछ ख़बर नहीं कि मक्खी जाल में फंस चुकी है और चिपचिपा रस है कि तार बुना जाता है। जाल बुना जाता है। एक डोल कुएँ की गहराई में लटका हुआ, तह तक पहुँचा हुआ। उसकी मुलायम रेत की गर्मी महसूस कर रहा है।

पानी की सतह पर छोटे छोटे घेरे जो बढ़ते बढ़ते सारे में फैल गए, दीवारों से टकराने लगे, बाहर जाने लगे, अंदर वापस आने लगे, एक सनसनी और गर्मी सारे में फैला रही है। दो जुड़वा पेड़, एक पीपल और एक आम। एक ही जड़ में उगे हुए, एक ही तने से पैदा, एक ही ज़िंदगी के साथी थे कि उग रहे थे। एक दूसरे का सहारा, एक दूसरे की तसल्ली, एक ही हवा में सांस लेते। एक ही सूत के पानी से जीते थे। आह ! वो जिस्म। और अब तो पीपल को बिजली ने जला डाला। जड़ से मसल डाला। मगर आम है कि क़िस्मत का मारा अब तक खड़ा है। काश कि उसपर भी बिजली गिरी होती। लुंजा अकेला मुरझाया हुआ, अभी तक ठोकरें खाने को ज़िंदा है। अगर वो होते ....

लिहाफ़ में एक हलचल, सिद्दीक़ा ने एक करवट ली।

आह ! ज़माना किसी के बहलावे में नहीं आता। किसी के फुसलावे में नहीं आता। और में एक अकेली हूँ। आह ! में अकेली हूँ। इस से तो ज़िंदगी का मज़ा देखा ही न होता। जो आज ये तन्हाई महसूस न होती। मेरे दिल में कोई जगह ख़ाली न होती। मुहब्बत की जगह। उम्मीद भी किया झूले झुलाती है। कभी पास आती है कभी दूर जाती है।

लेकिन उम्मीद काहे की ? अब तो एक मायूसी है कि सारे में फैली हुई है। बादलों की तरह उमड़ी हुई है। वो सूत की रस्सी का झूला, चार हम-जोलियाँ, पटरे के एक एक किनारे दो दो। और झोंके हैं कि पेड़ को हिलाए डालते हैं। घनगोर घटाओं में घुसे जाते हैं।

झूला किस ने डालो रे अमोरियाँ, वाह ! अनवरी और किश्वर, बस इतने ही झोंके ले सकते हो ? देखो में और कुबरा कितना बढ़ाते हैं। चक्कर ना आ जाएँ जब ही कहना........... फिर एक हँसी का गुल, और फिर एक क़हक़हों का शोर......... आह ! अब तो ज़िंदगी एक हवा है। जन्नत का बाग़ और हूरों की हँसी, फूलों के हार और ओस का झूमर, न वो बेर की डाली ! कहाँ मेरा घर, फिर

एक तपती हुई चट्टान, बंजर और सख़्त और उसके पास से ज़िंदगी लेकिन फिर एक नई हस्ती, फिर एक नई आन, मन्न-ओ-सल्वा[1] के मज़े, दूध की नहरों में नहाना और उनमें खेलना। फिर दिन ईद, रात शबरात, लेकिन आह ! ज़माने की एक करवट। इबलीस और गेहूँ और नेस्ती[2]। तन्हाई तन्हाई एक पहाड़ टूट पड़ा, काश कि वो होते..........अरे आदम !......... न फिर तकलीफ़, मुसीबत, बलाऐं। फिर वही ख़ुशी, एक क़यामत बपा है। आप-धापी का वक़्त है। इस्राफ़ील[3] का शोर, दज्जाल[4] है कि सबको फुसला रहा है। मैं तो उसी के पास जाऊँगी। उम्मीद तो है। आह ! ये तन्हाई। उम्मीद तो है। आह ! कोई सर पर हाथ रखने वाला नहीं, न तसल्ली न भरोसा न दिलासा। तन्हाई तन्हाई, रात अँधेरी और भयानक रात, अरे ला दो कोई जंगल मुझे। जंगल ... मुझे .... बाज़ार...... बा..... ज़ार... भोऊ... ओझ... रात।

---

[1] स्वर्ग से भेजा गया भोजन। स्वादिष्ट भोजन।

[2] शैतान,गेहूँ और बर्बादी। जन्नत में जब शैतान के कहने पर हव्वा ने गेहूं खाया तो उनको जन्नत से निकल दिया गया।

[3] एक फ़रिश्ते का नाम जो सूर फूंकेगा और प्रलय, क़यामत आ जाएगी।

[4] मुस्लिम मतानुसार एक व्यक्ति जो क़यामत,प्रलय से कुछ पहले जन्म लेगा और ईसा मसीह होने का दावा करेगा। धूर्त, धोकेबाज़

दिल्ली के सैर

- रशीद जहाँ

"अच्छी बहन हमें भी तो आने दो", ये आवाज़ दालान में से आई, और साथ ही एक लड़की कुर्ता के दामन से हाथ पोंछती हुई कमरे में आती है।

मलिका बेगम ही पहली थीं जो अपनी सब मिलने वालियों में सबसे पहले रेल में बैठी थीं। और वो भी फ़रीदाबाद से चल कर दिल्ली एक दिन के लिए आई थीं मुहल्ले वालियाँ तक के सफ़र की दास्तान सुनने के लिए मौजूद थीं।

"ऐ है, आना है तो आओ ! मेरा मुँह तो बिल्कुल थक गया। अल्लाह झूट न बुलवाए तो सैंकड़ों ही बार तो सुना चुकी हूँ। यहाँ से रेल में बैठ कर दिल्ली पहुँची और वहाँ उनके मिलने वाला कोई स्टेशन मास्टर मिल गए। मुझे सामान के पास छोड़ ये रफ़ू-चक्कर हुए और मैं सामान पर चढ़ी बुर्क़े में लिपटी बैठी रही। एक तो कम्बख़्त बुर्क़ा, दूसरे मर्द। मर्द तो वैसे ही ख़राब होते हैं, और अगर किसी औरत को इस तरह बैठे देख लें तो और चक्कर पर चक्कर लगाते हैं। पान खाने तक की बारी न आई। कोई कम्बख़्त खाँसे, कोई आवाज़े निकाले, और मेरा डर के मारे दम निकला जाये, और भूक इतनी ज़ोर की लगी हुई कि ख़ुदा की बचाए! दिल्ली का स्टेशन क्या है क़िला भी इतनी बड़ा न होगा। जहाँ तक नज़र जाती थी स्टेशन ही स्टेशन नज़र आता था और रेल की पटरियाँ, इंजन और माल गाड़ियाँ। सबसे ज़्यादा मुझे उन काले काले मर्दों से डर लगा जो इंजन में रहते हैं।"

"इंजन में कौन रहते हैं ?" किसी ने बात काट कर पूछा।

"कौन रहते हैं ? क्या पता कौन ! नीले नीले कपड़े पहने, कोई दाढ़ी वाला, कोई सफाचट। एक हाथ से पकड़ कर चलते इंजन में लटक जाते हैं देखने वालों का दिल सन सन करने लगता है। साहिब और मेम साहिब तो दिल्ली स्टेशन पर इतने होते हैं कि

गिने नहीं जाते। हाथ में हाथ डाले गिटपिट करते चले जाते हैं। हमारे हिंदुस्तानी भाई भी आँखें फाड़ फाड़ कर तकते रहते हैं। कमबख़्तों की आँखें नहीं फूट जातीं। एक मेरे से कहने लगा, "ज़रा मुँह भी दिखा दो।"

मैंने फ़ौरन...

"तो तुमने क्या नहीं दिखाया ?" किसी ने छेड़ा।

"अल्लाह अल्लाह करो ! मैं इन मुओं को मुँह दिखाने गई थी। दिल बल्लियों सा उछलने लगा", तेवर बदल कर, "सुनना है तो बीच में न टोको।"

एक दम ख़ामोशी छा गई। ऐसी मज़ेदार बातें फ़रीदाबाद में कम होती थीं और मलिका की बातें सुनने तो औरतें दूर दूर से आती थीं।

"हाँ बुआ सौदे वाले ऐसे नहीं जैसे हमारे हाँ होते हैं। साफ़ साफ़ ख़ाकी कपड़े और कोई सफ़ेद, लेकिन धोतियाँ किसी किसी की मैली थीं टोकरे लिये फिरते हैं, पान, बीड़ी, सिगरेट, दही बड़े, खिलौना है खिलौना, और मिठाईयाँ चलती हुई गाड़ियों में बंद किए भागे फिरते हैं। एक गाड़ी आकर रुकी। वो शोरगुल हुआ कि कानों के पर्दे फटे जाते थे, इधर क़ुलियों की चीख़ पुकार उधर सौदे वाले

कान खाए जाते थे, मुसाफ़िर हैं कि एक दूसरे पर पिले पड़ते हैं और मैं बेचारी बीच में सामान पर चढ़ी हुई। हज़ारों ही तो ठोकरें धक्के खाए होंगे। भई जल तू जलाल तू आई बला को टाल तू, घबरा घबरा कर पढ़ी रही थी। ख़ुदा ख़ुदा कर के रेल चली तो मुसाफ़िर और क़ुलियों में लड़ाई शुरू हुई,

"एक रुपया लूँगा।"

"नहीं, दो आना मिलेंगे।"

एक घंटा झगड़ा हुआ जब कहीं स्टेशन ख़ाली हुआ। स्टेशन के लुच्चे तो यहीं ही रहे। कोई दो घंटा के बाद ये मूंछों पर ताव देते हुए दिखाई दिए और किस लापरवाही से कहते हैं, "भूक लगी हो तो कुछ पूरियाँ वुरियाँ लादूँ, खाओगी ? मैं तो उधर होटल में खा आया।"

मैंने कहा कि, "ख़ुदा के लिए मुझे मेरे घर पहुँचा दो, मैं तौबा करती हूँ इस मुई दिल्ली की सैर से। तुम्हारे साथ तो कोई जन्नत में भी न जाये, अच्छी सैर कराने लाए थे। फ़रीदाबाद की गाड़ी तैयार थी उसमें मुझे बिठाया और मुँह फुला लिया कि –

तुम्हारी मर्ज़ी, सैर नहीं करतीं तो न करो !"

पर्दे के पीछे (ड्रामा) - रशीद जहाँ

(एक कमरा है जिसमें सफेद फर्श बिछा है और कमरे के बीच में एक रज़ाई बिछी है। उस पर गाव तकिया से लगी एक बीबी बैठी है जो दुखी और थकी हुई मालूम होती है। उनके पास एक छोटी-सी सुराही कटोरे से ढँकी हुई, ताँबे की थाली में रखी हुई है। उनके सामने एक दूसरी बीबी बैठी हुई है जो चालीस के लगभग उम्र की हैं और छालियाँ काट रही हैं। एक तरफ उनकी पिटारी रखी है और दूसरी तरह उगलदान। कमरे में दो दरवाजे सामने हैं और बाकी जगहों में ताक और अलमारियाँ हैं जिनमें बर्तन और बर्तन ढकने के कपड़े लगे हैं। बीच में छत पर से पंखा टँगा है जिस पर गुलाबी झालर लगी है। कमरे के एक कोने में पलंग, उस पर पलंगपोश बिछौना पड़ा है, दूसरी तरफ एक और रज़ाई बिछी है, गाव तकिया लगा है और उगालदान रखा है।)

मोहम्मदी बेगम - ऐ है आपा, हमारा क्या है, इतनी गुजर गयी, जो बाकी है वह भी ख़ुदा किसी न किसी तरह गुजार देगा। मेरा दिल तो अब दुनिया से अब ऐसा उकता गया है कि अगर इन छोटे बच्चों का ख़याल न होता तो ख़ुदा की क़सम मैं तो ज़हर ही खा लेती।

आफ़ताब बेगम - दीवानी हुई हो ! अच्छा अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है जो ज़हर खाने लगीं ! अब तो तुम्हारे बहार देखने के दिन आए हैं। बच्चे अब बड़े हो रहे हैं, अब चली हैं ज़हर खाने। मुझे देखो.......

मुहम्मदी बेगम - तुम्हें क्या देखूँ, कोई उम्र की बात है, कोई बूढ़े ही दुनिया से तंग आते हैं ? हमने तो जितनी ज़िन्दगी ही हवस बूढ़ों में देखी उतनी जवानों में न देखी। सारी दुनिया मरी जा रही है, पता नहीं हमारी मौत कहाँ जा कर सो रही है। बच्चे- वच्चे सब भूल जाते हैं और थोड़े ही दिन में सब ठीक.......

आफताब बेगम - होश में आ लड़की होश में ! अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है जो मरने की चिंता सवार है। मेरे से तो तुम दस बारह बरस छोटी हो। मेरे ब्याह की बातें हो

रही थीं जिस बरस तुम पैदा हुई हो। उस साल मलका मरी थी, मुझे खूब अच्छी तरह याद है। अल्लाह माफ़ करे चाची अम्मा को कितनी खुश थीं। मेरे लिए तो बिटिया ही है। चाची अम्मा के ब्याह के तीस बरस बाद तुम पैदा हुई थीं। खाना, नाच-रंग और क्या-क्या गाने वालियाँ आयी हैं। और तो और, तुम्हारा ब्याह भी किस अरमानों से हुआ है। सारी दिल्ली वाह-वाह बोल गयी थी, तुम्हारे बराबर कौन ख़ुशक़िस्मत होगा ? मुझ दुखिया की ओर देखो, तुम्हारे तो अल्लाह रखे, मियाँ बच्चे घर सब ही कुछ है।

मुहम्मदी बेगम - हाँ ठीक है, मियाँ बच्चे घर सब ही कुछ है। जवानी ! कौन मुझे जवान कहेगा ? सत्तर बरस की बुढ़िया लगती हूँ। रोज़-रोज़ की बीमारी, रोज़-रोज़ के हकीम डाक्टर और हर साल बच्चे जनने! हाँ, मुझसे ज्यादा कौन ख़ुशकिस्मत होगा।

(यह कह कर आँखों में आँसू भर आये, रूमाल से आँसू पोंछ कर और उगलदान में थूक कर फ़िर शुरू किया।)

अभी दो महीने की बात है। पिछला बच्चा गिरने से पहले की बात है कि डाक्टरनी को बुलाने का

विचार हुआ। डाक्टर ग़ियास ने भी यही कहा कि गुप्त रोग की वजह से बुखार ना रहता हो ? बेहतर है कि डाक्टरनी अंदर से देख ले। लो उम्र की बात सुनोः- डाक्टरनी ने मुझसे मेरी उम्र पूछी। मैंने कहा, 32 साल ! कुछ इस तरह से मुस्कुरायी जैसे कि भरोसा न हुआ हो। मैंने कहा, "मिस साहब ! आप मुस्कुराती क्या हैं ? आप को पता हो कि 17 साल की उम्र में मेरी शादी हुई थी और जब से हर साल मेरे यहाँ बच्चा होता है। केवल एक तो जब मेरे मियाँ साल भर को विदेश गये थे और दूसरे जब मेरी उनकी लड़ाई हो गयी थी ! और जो यह दाँत आप देख रही हैं डाक्टर ग़ियास ने उखाड़ डाले। पायरिया वायरिया या न मालूम कौन बीमारी होती है वह थी ! सारी बात यह है कि हमारे मियाँ जो विदेश से आये तो उनको हमारे मुँह से बदबू आती थी"। (वह बेचारी खूब हँसी।)

आफताब बेगम - तुम बातें ही ऐसी करती हो कि सुनने वाली हँसे न तो क्या करे।

मुहम्मदी बेगम - खैर उस बेचारी ने सीना देखा, पेट देखा, जब अंदर से देखा तो घबरा कर कहने लगी - बेगम साहिबा, आप को तो फिर दो महीने का गर्भ मालूम होता है। मेरा तो दिल सन्न से हो गया कि लो और आफत आ गयी।

(इतने में बच्चों के रोने की आवाज दूसरे कमरे से आयी और लोगों की चीख़ पुकार दूसरे कमरे में सुनाई दी। बेगम साहिबा गाव तकिया से उठ बैठीं और चीख कर कहा)

अरे कमबख्तों न दो मिनट सोने का आराम न बात करने की मोहलत ! इतनी हरामजादियाँ भरी हैं फिर भी बच्चे शोर मचाते जाते हैं। अच्छा होगा, ऐ ख़ुदा तू मुझे मौत दे दे कि दुनिया के वबाल से छूटूं।

(कमरे का दरवाजा खुला, दो आया साफ कपड़े पाजामे, मख़मल के कुर्ते, दुपट्टे पहने दो बच्चों को रोता हुआ लेकर आयीं और कुछ बच्चे उनसे बड़े दरवाजे में खड़े दिखे।यह सब बच्चे, दुबले, पीले और कमज़ोर थे। दरवाज़े में से चबूतरा और सहन दिखाई देते है।)

एक आया - बेगम साहिबा ! यह बड़े मुन्ने मियाँ नहीं मानते, जब कमरे में आते हैं बच्चों को सताते हैं खेलने नहीं देते। अब नन्ही बी की गुड़िया और छोटे मियाँ के

गेंद ले कर भाग गये और सीधे मर्दाने[1] में चले गये कई बार.........

मुहम्मदी बेगम - (गुस्से से) कसाई है, निगोड़ा कसाई। घर में किसी को चैन नहीं लेने देता। आखिर किस बाप का बेटा है !

(बच्चे को गोद में लेकर प्यार किया, पिटारी से कुछ निकाल कर दोनों बच्चों को खाने को दिया और उसके बाद आया को वापस कर देती है।)

जाओ, ख़ुदा के लिए अब सिधारो ! सुबह से शाम तक चीख-पुकार ! (फिर ठहर कर) अरे दरवाज़े तो बन्द कर दो ! सुबह से कई बार कह चुकी हूँ, जब इधर से निकलेगी दरवाज़ा खुला छोड़ देंगी।

आफताब बेगम – बुआ ! तुम्हारे घर में माशा अल्लाह[2] हर समय तो यह मुवा डाक्टर खड़ा रहता है, फिर भी बच्चे देखो, दुबले, पीले, भूक के मारे लगते हैं।

मुहम्मदी बेगम – ऐ, अपने आप ही होंगे जिनको माँ का दूध नसीब न हो ! आया जैसी मिलीं, रख ली गयीं। मोटी,

---

[1] वह स्थान जहाँ पुरुष रहते हों और औरतों का उस स्थान पर जाना उचित नहीं समझा जाता है।

[2] अरबी भाषा का एक वाक्य जिसका अर्थ है 'ईश्वर की कामना या इच्छा से'। यह वाक्य बुरी नज़र से बचाने के उद्देश्य से बोला जाता है।

पतली, मिल गईं, रख लीं गईं। मियाँ का हुक्म है कि जब ख़ुदा ने रुपया दिया है तो तुम क्यूँ दुख उठाओ। सारा मज़ा अपनी वासना का है कि जब बच्चा मेरे पास रहेगा तो ख़ुद को तकलीफ होगी। न रात देखें न दिन, बस हर समय बीवी चाहिए। और बीवी पर ही क्या है, इधर-उधर जाने में कौन से कम हैं।

आफताब बेगम - मुहम्मदी बेगम, तुम तो हर बात में बेचारे अपने मियाँ को ही दोषी ठहराती हो। आया रखे तो वो बुरा, न रखता तो वो बुरा होता। अल्लाह-अल्लाह करो।

मुहम्मदी बेगम - ऐ है आपा, तुम यहाँ नहीं थीं जब नसीर मरा है। चार महीने की जान। जो तकलीफ उस पर गुजरी है वह ख़ुदा दुश्मन पर भी न डाले। गैरों से न देखी जाती थी। उसकी आया थी तो काफी हट्टी-कट्टी! देखने में तन्दुरुस्त लेकिन गर्मी की बीमारी थी। अब इसकी किसे खबर थी। बच्चा बीमार पड़ा। यह बड़े-बड़े छाले बदन पर पड़ गये। और जब वो फूटे तो कच्चा-कच्चा गोश्त निकल पड़ा। जोड़-

जोड़ में पीप पड़ गई, तसले भर-भर के डाक्टर ग़ियास ने निकाली। मैं पर्दे के पीछे से देखती, मरूँ नहीं बल्कि शुक्र करूँ, जैसा था कि दो महीने इसी तरह सड़-सड़ कर बच्चा चला गया। इसके बाद तीन बच्चे हुए। कितना कहा मैं ख़ुद दूध पिलाऊँगी, लेकिन सुनता कौन है ? धमकी यह है कि दूध पिलाऊँगी तो मैं दूसरी शादी कर लूँगा। मुझे हर समय औरत चाहिए। मैं इतना सब्र नहीं कर सकता कि तुम बच्चों के बेकार के काम करो। और फिर तुम कहती हो -

आफताब बेगम - ऐ है, तो यह बात है ! मुझे क्या पता। ख़ुदा ऐसे मर्दों से भी बचाए, जानवर भी तो कुछ डरते हैं। यह तो जानवरों से भी बेकार हो गये। ऐसे मर्दों के पाले तो कोई न पड़े। ऐसी बातें पहले न थीं, अब जिस मर्द को सुनो कमबख्त यही आफत है। अब तुम्हारे बहनोई हैं, खैर अब तो बुढ़ापा है, कभी जवानी में भी ज़बरजस्ती नहीं की (मुस्कुरा कर) ख़ुदा की क़सम कई घंटो नाक रगड़वाती थी।

मुहम्मदी बेगम - (ठण्डी साँस लेकर) अपनी-अपनी क़िस्मत है। तुम्हारी इस बात पर याद आया कि वह डाक्टरनी वाली बात पूरी नहीं हुई। बात कहाँ की कहाँ जा पहुँची है। जब डाक्टरनी ने कहा मेरे दो महीने गर्भ है। तो बहुत हैरानी से मेरी तरफ देख कर कहने लगी - बेगम साहिबा ! आप तो कह रही थीं चार महीने से आप पलंग पे पड़ी हैं। रोज शाम को बुख़ार आता है और डाक्टर ग़ियास भी यही कह रहे थे कि रोज शाम को 100 या 101 पर बुख़ार हो जाता है। तो आपका मतलब है कि फ़िर आपके.......... मैंने कहा - ऐ मिस साहिब ! तुम भी भली हो, कमाती हो, खाती हो, मजे की नींद सोती हो। यहाँ तो मुर्दा स्वर्ग में जाए या नरक में, अपने हलवे-माँड़े से काम है। बीवी चाहे अच्छी हो चाहे मर रही हो, मर्दों को अपनी वासना से काम है। वह बेचारी सुनकर खामोश हो गयी। कहने लगी, आप इतनी बीमार हैं। और बुआ, वह ही बेचारी क्या... सभी डाक्टर यही कहते हैं कि आपके बच्चे किस तरह मोटे और तंदरुस्त हों जब एक तो आप ख़ुद

इतनी कमजोर हैं और दूसरे बच्चे इतनी जल्दी-जल्दी होते हैं। क्या किया जाय, इससे तो ईसाई होते तो भले रहते।

आफताब बेगम - तौबा करो तौबा ! कुफ़्र[1] न बको ! ख़ुदा इन काफ़िरों को मिटाए ! एक बेटा है वह भी एक ईसाई कर बैठा। मुझे उसके ब्याह के क्या-क्या अरमान थे। अब तो भाई ने तंग आकर वहीदा की मँगनी कर दी। हाय मेरे दिल पर क्या-क्या ना साँप लोटेंगे कि मेरे बचपन की माँग गैर के घर जाए। इससे तो वह पैदा न हुआ होता तो अच्छा होता और मेरे लिए तो मर गया।

मुहम्मदी बेगम - किस दिल से कोसती हो ? बुढ़ापे का सहारा है, कभी तो ठीक होगा।

आफताब बेगम - ऐ, वो क्या ठीक होगा, दो बरस हो गये, सूरत देखने को तरस गई। शहर के शहर में रहता है, कभी आकर झाँकता भी नहीं। अब तो सुना है ड़ेढ़

[1] इस्लाम धर्म या मत के अनुसार उससे भिन्न अन्य धर्म या मत, मुसलमानी मत से भिन्न या दूसरा मत, इस्लाम धर्म की मान्यताओं एवं आज्ञाओं के विरुद्ध कोई सिद्धांत, ऐसा आचरण, बात या सिद्धान्त जो इस्लाम धर्म के प्रतिकूल या विरुद्ध हो।

सौ मिलने लगे हैं। ख़ुदा का यही शुक्र है कि बच्चे अभी तक न हुए। मैं तो यही दुआ माँगती हूँ कि आफताब बन्दी, चाहे तेरी कब्र पर चराग़ जलाने वाला न हो, लेकिन वह हरामजादी, जवानी में मरे, ईसाइनी के तो बच्चा न हो। हाय बुआ, किससे अपना दर्द कहें, सब अपनी-अपनी मुसीबतों में घिरे हैं, मुहम्मदी बेगम ! तुमने कुछ और भी सुना, मिर्जा मकबूल अली शाह ने और ब्याह कर लिया, दो बीवियाँ मर चुकीं, पोतियाँ, नवासियाँ तक बच्चे वालियाँ हो गयीं और यह नई बीवी भी क्या भोली- भाली शक्ल की है। जवान है, बिलकुल जवान, मुश्किल से कोई बीस बरस की होगी, कमबख्त की किस्मत फूट गयी। अभी तो बेचारी की छः कुँवारी बहनें और बैठी हैं जब ही तो बेचारे माँ-बापू ने...

(इतने में लड़का, कोई 12 साल की उम्र, मिट्टी में पजामे की मुहरियाँ भरी हुई, जोर से दरवाज़ा खोल कर आता है। एक हाथ में रेल, दूसरे में कैंची और उसके पीछे-पीछे एक तन्दुरुस्त लड़की तंग पाजामे में मेले कपड़े, दुपट्टा लटकाए अन्दर आती है।)

लड़की - देख लीजिए अम्मा ! यह बड़े मिर्ज़ा नहीं मानते। यह देखिए मेरा नया पजामा काट दिया। (यह कह कर कुर्ता उठा कर दिखाती है।) मैं इनसे बात भी नहीं कर रही, चुपचाप बैठी अब्बा जान की अचकन में बटन टाँक रही थी। और देखिए यह दुपट्टे का आँचल भी फाड़ दिया। (दीवार से लग कर खिसिया कर रोने लगी। लड़का बहन की नकल उतारते हुए)

लड़का - ऊँउ, ऊँउ, ऊँउ अपनी नहीं कहतीं ! हाँ, तुम सी रही थी? कह दूँ अम्मा से यह गन्दी किताबें पढ़ रही थी "दिलदार यार या बाँका छैला"। मैंने ठीक से नहीं देखा कि क्या था।

लड़की - (जल्दी से मुड़ कर) ख़ुदा के लिए इतना झूठ मत बोला करो, ख़ुदा की कसम अम्मा ! मैं मौलवी अशरफ अली साहब का बहिश्ती जेवर[1] पढ़ रही थी। मेरे पीछे पड़ गये कि दिखाओ। जब मैंने नहीं दिखाया तो मेरा पजामा काट दिया। आप कभी इन्हें कुछ नहीं कहतीं।

---

[1] इस्लाम धर्म के देवबंदी सम्प्रदाय के धर्मगुरु अशरफ अली थानवी की किताब का नाम।

मुहम्मदी बेगम - (माथा पीट कर) शाबाश है बेटी, शाबाश। अम्मा मरें या जियें, हाथ बँटाने से तो रही, और छोटे बहन-भाइयों से लड़ती हो। (बेटे की तरफ मुड़ कर) यह नटखट तो सारे दिन किसी न किसी को परेशान करता रहता है। भाग यहाँ से।

आफताब बेगम -लाओ मियाँ, मुझे कैंची दे दो, देखो अपनी बहन को कौन परेशान करता है। वह बेचारी कुछ दिन के लिए तुम्हारे पास है। अब बरस दो बरस में ब्याह कर ससुराल चली जायेगी तो सूरत देखने को तरस जाओगे!

(साबरा ने इस बात पर शर्मा कर सर झुका लिया और चुपके से चली जाती है। बड़े मिर्जा गाव तकिया का घोड़ा बना कर बैठ जाते हैं और पल भर ठहर कर कूदने लगते हैं।)

लड़का - तो फिर यह हमें क्यूँ नहीं दिखाती थीं ?

मुहम्मदी बेगम - ऐ है, मिर्जा, ख़ुदा के लिए रहम करो, और इस तरफ मुझको न हिला डालो। सारा जिस्म हिला दिया। कमबख्त धड़कन होने लगी। ख़ुदा के लिए जाओ, बाहर जाओ अपने अब्बा के पास और मौलवी साहब आते ही होंगे, पाठ याद कर लिया?

(पाठ का नाम सुन कर बड़े मिर्ज़ा ने भी चुपके से चले जाना ठीक समझा)

आफताब बेगम - ज्यादा बच्चे होते हैं, माशा अल्लाह, घर तो भरा-भरा मालूम होता है। लेकिन हर समय का शोर-गुल नाक में दम कर देता है। बुआ ! अब मैं घर में हर समय कव्वे भगाने वाल की तरह बैठी रहती हूँ। यह आते हैं नमाज-वमाज़ पढ़ने। घड़ी-दो घड़ी बैठे, फिर बैठक में चले गये, ख़ुदा किसी को ऐसा अकेला भी न करे। हाय, क्या-क्या अरमान थे !

(दरवाजा खुलता है और एक कोलन अन्दर आती है।)

कोलन - सलाम बेगम साहिबा, सलाम ! बड़ी बेगम, लीजिए मैं तो आप के यहाँ हिस्सा ले कर जाने वाली थी, कहो बेगम, मिजाज कैसा है, अल्लाह रखे बच्चे कैसे हैं ?

मुहम्मदी बेगम - हाँ, मैं तो जैसी हूँ वैसी हूँ। कहो भाभी, अच्छी हैं, सब बच्चे अच्छे हैं ? ख़ुदा पोता मुबारक करे। पंजीरी होगी। रहीमन ले, थाली खाली कर दे। (संदूकची खोलते हुए) आपा एक टुकड़ा पान का दे देना।

आफताब बेगम - रहीमन, मेरा हिस्सा भी यहीं ले ले।

(यह कह कर पान लगाने लगीं, मुहम्मदी ने दो आने कोलन को दिये।)

मुहम्मदी बेगम - सब को बहुत दुआ सलाम कह देना। किसी दिन तबीयत अच्छी रही तो आऊँगी, सब के मिलने को दिल फड़क गया। बच्चे को देखने को बड़ा दिल चाहता है। और बुआ, भाभी से कहना तुमने तो न आने की कसम खा ली है।

(अफताब ने पान दिया और कमरबन्द से पैसे निकाल कर दो आने दिये।)

कोलन - बेगम साहिबा, हमारी बीवी भी बहुत प्यार करती है। फुर्सत नहीं मिलती, आजकल तो खैर घर भरा है। सब ही आये हुए हैं।

आफताब बेगम - सुल्तान दुल्हन को मेरी तरफ से दुआ कह देना और कहना पोता मुबारक हो। मैं शुक्रवार को इंशा अल्लाह आऊँगी।

(कोलन थाली ले कर दोनों को सलाम करके चली जाती है।)

मुहम्मदी बेगम - आपा ! हमारी भाभी सुल्तान का भी खूब तरीका है। उनके मियाँ ने कभी चालीस रुपये से ज्यादा नहीं कमाया, लेकिन वह सलीका है कि

माशा अल्लाह सब कुछ किया। बेटों का ब्याह किया, बेटियों का ब्याह किया। ख़ुदा की महरबानी से अब बेटा अच्छा नौकर हो गया है, कोई सवा सौ का आगे बढ़ने की भी उम्मीद है।

आफताब बेगम - बहू भी अच्छी है (ठंडी साँस भर कर) अपनी-अपनी क़िस्मत है। एक हम हैं ! खैर यह तो होगा, कहो कहो रज़िया की भी कुछ खबर है ? तुम्हारे मामू ने तो उसकी ऐसे चट मँगनी पट ब्याह किया कि किसी को बुलाया तक नहीं।

मुहम्मदी बेगम- बुलाया तक नहीं तो क्या हुआ, घर-घर दोगुना-तीनगुना बटवाया था। शादी उस ग़रीब की जैसे हुई वह अपनी बदनामी के डर से जल्दी कर दी और उसमें भी ख़ुदा उनका भला करे।

आफताब बेगम - ऐ है, यह बात थी, तो मुझे तो पता ही नहीं। हाँ तो फिर क्या हुआ ?

मुहम्मदी बेगम - तुम्हें नहीं पता ! अब तो सभी को पता है। इस बेचारी की उम्र ही क्या है, मेरी साबरा से दो ढाई साल बड़ी है। मेरी शादी के बाद पैदा हुई है। जब छोटे मामू बरसों बाद कलकत्ता से आए, बरसों

बाद आये थे हम सभी इकट्ठा थे, नानी अम्मा बेचारी, हाथ पैर में कंपन, सबसे ज्यादा खुश थीं। रज़िया को मैं कुछ दिन के लिए साथ ले आयी। फिर छोटी मामी मायके चली गयीं। लड़की तीन-चार महीने रह गयी। रज़िया ददिहाल पर जान देती है। ननिहाल से उसे कुछ मुहब्बत नहीं। बड़ी बहन का घर था, रह गई तो क्या हुआ। मेरे फरिश्तों तक को खबर नहीं। जब माँ मयके से आई तो रज़िया अपने घर चली गई। एक दिन रज़िया का ख़त आया कि आपा जान, ख़ुदा के लिए जल्दी आइए। बस आपा क्या बाताऊँ, जब वहाँ पहुँची तो छोटी मामी तो आपने देखी हैं कैसी हैं। दिखावे की बातें करती हैं कि ख़ुदा की पनाह, बहुत आव-भगत की। रज़िया ने चुपके से एक ख़त दिया और कहा, दुल्हा भाई रोज हमारे यहाँ आते हैं। और अम्मा बड़ी आव-भगत करती हैं। और चुपके-चुपके बातें होती हैं। कुँवारी लड़की और क्या कहती। यह भी बेचारी ने बड़ी हिम्मत की। ख़त देखूँ तो हमारे मियाँ का रज़िया के नाम।

वह प्रेम पत्र कि नॉविलों में भी न होगा। बस मैं जल ही तो गई। रज़िया को समझा कर कि तुम कुछ न कहो, मैं किसी से तुम्हारा नाम नहीं लूँगी, मैं जलती-सुलगती घर पहुँची। उनसे कहा, ऐ आपा, ख़ुदा की कसम ! आँखों में घुस गए कि क्या बुराई है और मैं तो रज़िया से शादी करूँगा, चाहे तुम्हें तलाक ही देना पड़े। मैंने कहा, मियाँ, होश में हो या बिल्कुल ही बेहोश हो। शरीफों की लड़की है, अगर उसका नाम भी लिया तो उसके बाप, चाचा, भाई तुम्हारी हड्डी-बोटी एक कर देंगे। इस सोच में भी न रहना।

आफताब बेगम - तो तुम्हारी मामी ने चुपके-चुपके बात पक्की कर ली होगी, इसलिए तो गर्व के साथ कह रहे होंगे।

मुहम्मदी बेगम - ऐ और क्या ! उन्हें अल्लाह माफ़ करे, अम्मा और मुझसे हमेशा की दुश्मनी है। जब अम्मा बीमार थीं तब क़समें खा-खा कर कहती थीं तब तक चैन न लूँगी जब तक मुहम्मदी का घर उजड़वा न दिया हो। और हम ही पर क्या, बड़ी मामी जान से भी यही जलन है और चूँकि रज़िया की मँगनी चचा

के यहाँ हुई थी तो रोज- रोज की लड़ाई थी कि दुश्मनों में बेटी न दूँगी।

आफताब बेगम - (हँस कर) और बुआ ! तुम्हारे मियाँ में ही क्या रखा था ! बीवी वाला, बच्चों वाला, हाँ, रुपया है। तो तुम्हारे बड़े मामू भी ग़रीब न थे। कही शरीफों में भी ऐसी बातें हुई हैं। मूए पंजाबियों में दो बहनें अपनी बेटियाँ एक मर्द को ब्याह दें तो ब्याह दें, हमारे यहाँ तो ऐसा होता नहीं। अब नया ज़माना है, जो कुछ न हो थोड़ा है। हाँ तो फिर क्या हुआ ?

मुहम्मदी बेगम - जब मैं बिगड़ी और बातें सुनाईं तो ख़ुशामद करने लगे कि मैं उस पर आशिक हो गया हूँ। हाय, ख़ुदा के लिए मेरी मदद करो। मेरी मदद करना तुम्हारा फ़र्ज़ है। कुरआन खोल कर बैठ जाएँ और आयतें पढ़ें कि मैं उनकी मदद न करूंगी तो मरने के बाद यह होगा वो होगा। अब इससे ज्यादा कौन-सी आग होगी ? यह हर समय का जलना, हर समय यही बातें कि मैं पागल हो जाऊँगा। कमरा बंद किये मुँह औंधाए पड़े हैं। रज़िया, हाय रज़िया हो रही है, मैं पड़ी सब सुन रही हूँ। ख़ुदा

की कसम आपा इस कदर कलेजा पक गया है कि यह रुपया-पैसा अब तो मुसीबत मालूम होता है। रूखी रोटी हो और सुख हो। आपा, जरा एक पान देना, बातें करते-करते होंठ सूख गये।

(पास सुराही रखी थी, उसमें से पानी निकाल कर पिया। और दोनों ने पान खाया)

बस यही हालत जारी रही और वह इश्क़िया शब्द उस मासूम कुवाँरी बच्ची के लिए बोला करें और मैं सब सुनूँ और दिल में घुटूँ, और छोटी मामी हैं कि वही सुलूक वही आव-भगत। रज़िया, तुम्हारे दुल्हा भाई आये हैं। पान दो, इलायची लाओ।

आफताब बेगम - अच्छा तो यह सब किया-धरा तुम्हारी मामी का था।

मुहम्मदी बेगम - और क्या ! वह लड़की घण्टों रोए। कहीं मैं मिल जाऊँ तो दिल का ग़ुबार निकाल ले। एक महीना तो मैं चुप रही। फिर एक दिन दोनों मामू मुझसे मिलने आये। मैंने कहा, क्यूँ मामू जान, क्या रज़िया की मँगनी टूट गयी ? दोनों भाई चकरा गये, फिर मैं भरी बैठी थी - मैंने सब कच्चा चिट्ठा

कह डाला। दोनों में कुछ राय हुई होगी। तीसरे दिन रज़िया का ब्याह हो गया।

आफताब बेगम - अल्लाह अल्लाह खैर सल्लाह[1]।

मुहम्मदी बेगम - लेकिन बुआ यह छः महीना घर में नहीं घुसे। हर समय चावड़ी[2] में पड़े रहते थे ! और मैं तो खुश थी। अल्लाह ग़वाह है जिस दिन यह इधर-उधर चले जाते हैं तो मैं चैन की नींद सोती हूँ। रोज़ यही है कि तुम रोज़-रोज़ की बीमार हो, मैं कब तक सब्र करूँ ? मैं दूसरा ब्याह करता हूँ। और फिर यह ज़िद है कि तुम मेरा ब्याह कराओ। शर`अ[3] में चार बीवियाँ जायज़ हैं तो मैं क्यूँ न ब्याह करूँ। मैंने तो कहा, बिस्मिल्लाह[4] करो। अब साल भर बाद साबरा की विदाई है। बाबा-बेटियों का साथ- साथ हो जाय। एक गोद में नवासा खिलाना, दूसरी में नई बीवी का बच्चा। बस लड़ने लगते हैं कि औरतें

---

[1] अरबी भाषा का वाक्य जिसका अर्थ है 'इससे अधिक कुछ नहीं'।

[2] वह स्थान जहाँ यात्री ठहरते हों, पड़ाव।

[3] इस्लामी कानून

[4] अरबी भाषा का एक वाक्य जिसका अर्थ है 'मैं अल्लाह के नाम से प्रारम्भ करता/करती' हूँ। इस्लाम में किसी भी कार्य या बात को प्रारम्भ करते समय बोला जाता है।

क्या जानें, ख़ुदा ने इनको एहसास ही नहीं दिया। मैं तो कहती हूँ कि तुममें सारे मर्दों का एहसास भरा है। अब क्या......

आफताब बेगम - (भड़क कर) मुहम्मदी बेगम ! जहाँ देखो यही आफत आई है। मर्दों में तो वह गुण हैं कि अट भी मारे पट भी। अब यह ज़ुल्म कि ब्याह भी करूँगा और यह भी बीवी ही कमबख्त।

मुहम्मदी बेगम - इसी से तो जल-जल कर अपने मरने की दुआ माँगती हूँ। एक तो हर समय की अपनी बीमारी, रोज-रोज का बच्चों का दुख अलग, बड़े बच्चे तो माशा अल्लाह तंदरुस्त हैं, पर छोटे बच्चे हर समय बीमार रहते हैं। इन सब बातों ने जीने का मज़ा बिलकुल खो दिया। और यह तो मैं जानती हूँ कि यह दूसरा ब्याह करेंगे ही, हर समय का यह धड़का अलग। ख़ुदा इससे पहले तो मुझे उठा ले कि मैं सौतन का मुँह देखूँ। और सौतन के डर से बुआ मैंने क्या-क्या न किया। दो बार अपरेशन भी कराया।

आफताब बेगम - ऐ हाँ, हमने तो सुना था कि तुमने अब कुछ ऐसा करवा लिया है कि अब बच्चे न होंगे।

मुहम्मदी बेगम - यह तुमसे किसने कहा ? सही बात यह थी कि पेट और नीचे का सारा जिस्म झुक आया था, तो उसको ठीक करवाया गया था कि फिर से मियाँ को नई बीवी का मजा आये। ऐ बुआ, जिस औरत के हर साल बच्चे हों उसका ज़िस्म कब तक ठीक रहेगा ? फिर खिसक गया। और फिर मेरे पीछे पड़ कर डरा-धमका कर मुझे कटवाया। और फिर भी खुश नहीं हैं।

(अज़ान की आवाज़ पास की मस्जिद से आती है)

आफताब बेगम – ऐ.... है, ज़ुहर[1] का समय हो गया। बातों में ऐसी खोयी कि सब कुछ भूल गई।अब नमाज़ पढ़ के ही जाऊँगी। तुम्हारे भाई बेचारे इंतिज़ार कर रहे होंगे।

मुहम्मदी बेगम - ऐ आपा, आज तुम आ गईं तो इतना दिल का ग़ुबार निकल गया। जरा जल्दी-जल्दी आया

---

[1] दोपहर की नमाज़।

करो। मैं तो बीमार हूँ, न कहीं आने की न कहीं जाने की। ऐ रहीमन ! रहीमन ! गुल शब्बो !!

(रहीमन आती है)

मुहम्मदी बेगम - जा बड़ी बेगम साहिबा को वुज़ू[1] करवा। और... और दालान में चौकी पर जा-ए-नमाज़[2] बिछवा दे।

(पर्दा)

---

[1] नमाज़ के लिए नियमपूर्वक हाथ-पाँव और मुंह आदि धोना।

[2] नमाज़ के लिए बिछाए जाने वाला कपड़ा, चटाई आदि।

जवाँ-मर्दी

-महमूदुज़्ज़फ़र

वो मेरी बीवी जा रही, मगर उसके होंटो पर वैसी मुस्कुराहट का नाम तक नहीं जैसा कि लोगों ने मेरे दिल को बहलाने के लिए मुझसे कहा था। बस हड्डीयों का एक ढांचा है। उसकी भयानक सूरत से दिखता है कि वो एक जानलेवा बीमारी का शिकार है और मौत का डर उस पर जारी है। उस की आँखों में मेरे लिए अब मज़ा और प्यार की जगह बेगानापन और नफ़रत है, मैं हक़दार ही इसका था। इस नफ़रत की वजह, वो नवजात बच्चा है जिसका सर उसके कुल्हे की हड्डीयों में अब तक फंसा दिखाई देता है जिसकी वजह से उसकी जान गई। ये भला किसे ख़्याल हो सकता था कि मेरी बीवी को मरते वक़्त मुझसे नफ़रत होगी। मैंने उसको तक्लीफ़ और मौत से बचाने के लिए कौन सी बात उठा रखी थी, मगर नहीं। मैं ही उस की मौत का ज़िम्मेदार हुआ, मैंने ही

उसको दर्द और दुख पहुँचाया, मर्दों की जहालत और बेवक़ूफ़ी की कोई हद नहीं। मगर ये भी कहना सही नहीं कि मैं जहालत और बेवक़ूफ़ी का शिकार था। हाँ ये सरासर ग़लत है। दरअसल मैं ग़ुरूर के पंजे में गिरफ़्तार था जिसका मुझे अफ़सोस है।

हमारी शादी ऐसी उम्र में हुई थी जब हम में एक दूसरे के जज़्बात समझने की समझ तक न थी। लेकिन बाद में जो घटित हुआ उसका इल्ज़ाम मैं क़िस्मत, या ऐसे हालात पर जिन पर मुझे कोई क़ाबू न था, नहीं रखना चाहता।

मुझे अपनी बीवी से कभी मुहब्बत नहीं हुई और होती भी कैसे ? हम दोनों अलग अलग ज़िंदगी के थे। मेरी बीवी पुराने ज़माने की पतली, गन्दी गलियों में और मैं नए ज़माने की साफ़ और चौड़ी पक्की सड़कों पर। लेकिन जब मैं दूसरे देश में गया और उससे कई बरस तक दूर रहा तो कभी कभी मेरा दिल उसके लिए बेचैन होता था। वो अपने छोटे से अटूट पुराने क़िले में थी, और मैं ज़िंदगी की दौड़ धूप और बेकार इश्कबाज़ी से तंग आकर कभी कभी इस नैक और बावफ़ा औरत का ख़्वाब देखा करता था जो बिना किसी लालच के मुझ पर से सब कुछ लुटाने के लिए तैयार थी। जब मेरा ये हाल होता..... तो बेचैनी के साथ मुझे उससे मिलने की तमन्ना होती। एक बार जब मेरी ऐसी हालत थी, कि मुझे उसका एक ख़त

मिला। मैं बेचैन हो गया और फ़ौरन छः हज़ार मील की दूरी से अपने देश की तरफ़ चल पड़ा। उसने ख़त में लिखा था:-

> "मैंने अभी तकिये के नीचे से आपका ख़त निकाल कर पढ़ा। बहुत छोटा है। शायद आप अपने में मगन होंगे, मगर ख़ैर मुझे इसकी कोई शिकायत नहीं, बस आपकी मुझे ख़ैरित पता चलती रहे और आप अच्छे रहें और ख़ुश रहें, मेरे लिए यही बहुत है। जब से मैं बीमार हूँ सिवाए इसके कि आपको याद करूँ और उन अजीब अजीब चीज़ों और नए नए लोगों का ख़्याल करूँ जिनसे आप वहाँ मिलते होंगे मुझे और काम नहीं। मुझसे चला नहीं जाता इस वजह से पलंग पर पड़ी पड़ी तरह तरह के ख़्याल किया करती हूँ। कभी तो इस में मज़ा आता है और कभी इससे बहुत तक्लीफ़ होती है, जब लोग मेरी सेहत के बारे में बात करते हैं और मुझसे हमदर्दी दिखाते हैं, और ये नसीहत करते हैं तो मुझे बहुत मायूसी होती है, ये लोग यह तक नहीं समझते कि मुझे क्या रोग है। उन्हें सिर्फ अपने दिल की तसल्ली के लिए मेरी हालत पर रहम आता है। अपने माँ-बाबा पर भी बोझ हूँ, वो अपने जी में सोचते होंगे कि जब मेरी शादी हो जाने के बाद भी मैं ऐसी

बदनसीब हूँ कि उनके गले पड़ी हूँ। इसका नतीजा ये है कि मैं हर समय इस कोशिश में रहती हूँ कि बहुत ज़्यादा मायूसी और तकलीफ न दिखाऊँ और मेरे माँ-बाबा ऐसी कोशिश करते हैं जिससे ये दिखे कि उन्हें मेरी बीमारी की वजह से बड़ी परेशानी और फ़िक्र है। लेकिन दोनों तरफ़ बनावट ही बनावट है। मैं आपसे किसी बात की शिकायत करना नहीं चाहती और न आपके काम में रुकावट डालना चाहती हूँ। आप मुझे भूल न जाएँ और कभी कभी ख़त लिख दिया करें, मेरे लिए यही बहुत है बल्कि कभी कभी तो मुझे ये ख़्याल होता है कि आपका मुझसे दूर ही रहना ठीक है। मुझे डर इस बात का है कि जैसे बीमारी के बाद से यहाँ मैं क़रीब क़रीब सबसे अनजान सी हो गई हूँ वैसे ही मैं कहीं आपको भी न खो बैठूँ। दिन रात मेरी बुरी हालत देखकर कहीं आपका दिल भी मेरी तरफ़ से न हट जाये। वहाँ से तो आप बस इस बारे में सोच सकते हैं और मैं आपको अपना वो साथ देने वाला मान सकती हूँ जिसकी मेरे दिल को तमन्ना है।"

जब मुझे ये ख़त मिला तो मुझ पर इश्क़-ओ-मुहब्बत की एक लहर सी दौड़ गई, जबकि कि वो बीमार थी और उसे रोग लग

गया था मगर उसको सीने से लगाना मेरा फ़र्ज़ था, मैं ये साबित कर देना चाहता था कि मेरी मुहब्बत में कोई बात आड़े नहीं आ सकती, मैं चाहता था कि उसे पता हो जाये कि मैं ही वो साथ देने वाला हूँ जिसकी उसे तमन्ना थी, मैंने अपने को क़ुसूरवार और बुरा माना और उसको मासूम और निर्मल, जैसी उसने मेरे साथ नम्रता की और मेरी सेवा की, मेरा भी फ़र्ज़ था कि मैं उसके साथ वैसा ही सुलूक करूँ। ये इरादा कर के मैं अपना काम छोड़कर घर की तरफ़ चल खड़ा हुआ।

मैं अभी रास्ते ही में था मेरे ख़्यालों में तबदीलियाँ होने लगीं। वो पहले का इरादा बिल्कुल ग़ायब हो गया और रोज़मर्रा की छोटी छोटी बातों की तरफ़ मेरे ख़्यालात दौड़ने लगे, जैसे रोज़ी कमाने का मैं कौन सा तरीका निकालूँगा अपने दोस्तों में से किन किन से मुलाक़ात जारी रखूँगा। अपने सुसर और सास से किस तरह मिलूँगा, उनसे साफ़ साफ़ बातें करूँ या ये कि उनकी तरफ़ से बेरुख़ी बरतूँ, वग़ैरा वग़ैरा। सिर्फ अपनी बीवी से मिलने की पहले जैसी तमन्ना बाक़ी न रही, ये ही नहीं बल्कि ज़रा ज़रा सी रोज़ाना ज़िंदगी की परेशानियों ने मेरी तमन्नाओं और उमंग का ख़ात्मा कर दिया। घर पहुँचने पर ये परिशानियाँ नफरत में बदल गईं, जिनसे भागना नामुमकिन था। पुराने ज़माने की जिन जिन दिल रिझाने

वाली की मैंने अपने दिमाग़ में तस्वीर बनाई थी उनका कहीं पता भी न था। बजाए इसके मैंने ख़ुद को एक छोटी और अँधेरी, गंदी, ज़ुल्म और जहालत से भरी दुनिया में बंद पाया, स्टेशन पर जो लोग मुझसे मिलने आए उनमें बहुत से बेहूदा, बदमाश, तंगनज़र और बेकार तरह के आदमी थे, उन सबने बहुत ख़ुशी के साथ मेरा स्वागत किया, मुझे बिठाया गया, मुझपर बातें बनाई गईं, वही पुराने बेकार मज़ाक़ हुए और दूसरों की चुगली की गई। कई दिन तक बैठकों और दावतों का सिलसिला रहा। उसके बाद कहीं उन लोगों से छुटकारा मिली। इस बीच में मैं अपनी बीवी से सिर्फ थोड़ी थोड़ी देर के लिए मिल सका। लेकिन उसके तेल से चिपके हुए बाल, उस का दुबला पतला जिस्म और पीला चेहरा, दावतों, नाच- गानों, बैठकों और इधर उधर बातचीत के समय भी बार-बार मेरी नज़र के सामने आ जाता था।

जब सब मेहमान चले गए तो मैं अपनी बीवी के पास गया और उसके पास पलंग पर जा कर बैठा। वो सीधी लेटी रही और मेरी तरफ़ उसने नज़र उठा कर नहीं देखा। मैं थोड़ी देर तक तो उसकी हर साँस के साथ उसके सीने का उतार चढ़ाव देखता रहा। फिर मैंने उसका कमज़ोर हाथ अपने हाथ में ले लिया और कुछ देर तक हम दोनों यूँही ख़ामोश बैठे रहे। फिर मैं बोला -

“लीजिए अब तो मैं आपके पास आ गया, कुछ बातें कीजिए, आप इतनी चुप क्यों हैं ?”

उसने जवाब दिया, “मैं क्या बातें करूँ, ख़ैर आप आ गए।”

मैंने एकदम ये पाया कि इस तरह काम नहीं चलने का। मैंने शुरू में जो इरादा किया था वो मुझे याद आ गया और मैंने जल्दी से कहा -

> “वाह, आपको कहना तो मुझसे बहुत कुछ है, इतने दिन जो में यहाँ नहीं रहा तो आप क्या करती रहीं और कैसी रहीं सब मुझे बताइए, आख़िर इतने दिन तक आपने मुझसे बातचीत नहीं की अब उसकी कसर निकालिए, याद है आपको, आपने मुझे एक बार ख़त में लिखा था कि आपको एक साथ देने वाले की तमन्ना है। मैं ही वो इंसान हूँ और अब आपके पास इसलिए आया हूँ कि हर समय आपके साथ रहूँ और कभी आपसे जुदा न हूँ।”

मगर मेरी तमाम कोशिशें बेकार साबित हुईं। मेरी बातों से दिखता था कि रटे हुए पाठ की तरह हैं और उनसे मेरी बीवी की कोई तसल्ली नहीं हुई। कुछ देर तक मुझे ये उम्मीद रही कि उसे

इसका शायद एहसास नहीं हुआ। मगर वो घबराहट और बेचैनी से मेरी टोपी उठाकर हाथों से मलने दलने लगी और फिर ऐसी बात शुरू की कि मुझे अपनी नाकामयाबी का यक़ीन हो गया।

उसने कहा-

"भला मैं क्या कहूँ ? यहाँ तो जैसे दिन वैसी रात, लेकिन आप क्यों चुप हैं ? आपको नए नए अनुभव हुए होंगे, बहुत सी चीजों क वास्ता पड़ा होगा। आप मुझसे उन सब बातों का बयान कीजिए, वहाँ की अजीब अजीब चीज़ें, तरह तरह की मशीन, तरह तरह के लोग, नई ज़िंदगी, आप लिखा करते कि आपको इन सब के बारे में मुझे लिखने का समय नहीं, लेकिन अब तो आप मेरे पास हैं, अब तो आपको समय है।"

ये उसने जान कर मेरे घमंड पर हमला किया। अब मुझे मालूम हो गया कि बरसों की दूरी ने हमारे रिश्ते में कोई बदलाव नहीं किया, हम पहले की तरह अब भी एक दूसरे से अजनबी थे। और एक दरिया के दो अलग अलग किनारों पर अजनबी की तरह खड़े हुए थे, हमने फिर एक दूसरे के साथ दिखावा शुरू कर दिया।

मैंने कहा-

“हाँ हाँ मुझे तो आपसे बहुत सी बातें करनी हैं, हम दोनों मिलकर क्या क्या करेंगे, ये तय करना है। लेकिन पहले आप जल्दी से अच्छी तो हो जाइए, जब आप अच्छी हो जाएँगी तब हम उस के बारे में बात करेंगे, अभी तो आपको ख़ामोशी से आराम करना चाहिए, आप अपने दिल-और दिमाग़ पर ज़ोर न डालिए, मेरे आने की वजह से शायद आपको थकान हो गई है। आप आराम कीजिए और ज़्यादा सोचिए मत, अच्छा मैं अब जाता हूँ आप सो जाइए।”

मैंने उसका हाथ छोड़ दिया और वहाँ से उठकर चला आया। उसके बाद न तो मैंने उससे ज़्यादा मिलने बढ़ाने की कोशिश की और न किसी ख़ास बात पर ज़्यादा देर तक बात ही की। दिन में एक दो बार उसे देखने जाया करता, पूछा करता कि उसकी स्वास्थ्य कैसा है और ऐसी ही दो एक बातें कर के चला आता और अपने काम में लग जाता। अचानक से मेरा काम भी इन दिनों कुछ अच्छा नहीं चल रहा था और मुझे फ़ुर्सत बहुत थी।

धीरे-धीरे मैं फ़िर अपने पुराने दोस्तों के साथ रहने लगा

और उनकी बेकार और फुजूल आदतें मुझमें भी आ गईं। ताश, शराब और बिना सर पैर की बातों का सिलसिला जारी रहने लगा। हम अपने को संगीत का भी माहिर समझते थे और शहर की नामवर गाने वालियों के सरपरस्त बन बैठे। ऐसी हालत में ज़ाहिर है कि मैंने एक औरत भी रख ली थी। हमने बे-मतलब और बेवज़ह ज़िंदगी गुज़ारने का यही रास्ता निकाला था। हम में से जो लोग दूसरे देशों का सफ़र कर आते थे वो अपनी जवाँ-मर्दी और आशिक़ी की दास्तानें दूसरों को सुना सुना कर उन पर रोब जमाते थे।

लेकिन मुझे अपनी बीवी से छुटकारा पाना नामुमकिन था। उसकी सेहत की ख़राबी की वजह से मेरे पास हाल चाल पूछने के लिए ख़त और दोस्तों और रिश्तेदारों का एक सिलसिला बना रहता। कोई मुझे समझाया करता तो कोई अपमानित, कोई दिलासा देता तो कोई हमदर्दी दिखाया करता, इन सब बातों से मेरी ज़िंदगी मुसीबत हो गई। मेरे सास और सुसर को मेरी लापरवाही बहुत चुभती थी, वो डरते थे कि कहीं मैं उनकी लड़की को बिलकुल छोड़ न दूँ। उधर मेरी माँ सुबह शाम मुझसे दूसरी शादी कर लेने पर ज़ोर देती थीं। ख़ानदान में दो ऐसे गिरोह बन गए जिन्हें एक दूसरे से सख़्त दुश्मनी थी। दोनों मुझे अपनी तरफ़ खींचने की हर समय कोशिश करते रहते थे।

लेकिन इसके बाद भी माँ के जोर देने पर भी मैं दूसरी शादी करने पर राज़ी नहीं हुआ। आख़िरकार लोगों ने मेरी मर्दानगी पर शक करना शुरू किया और तरह तरह की बातें करने लगे। इस पर तो मुझसे रहा न गया और मैंने ये सोच कर लिया कि कुछ न कुछ ज़रूर करना चाहिए।

मैं अपनी ससुराल गया और वहाँ जा कर कहा-

"आपकी लड़की बीमार वीमार कुछ भी नहीं, ये सब ख़्वाह-मख़ाह इसे अपने यहाँ रोकने के बहाने हैं। मैं उसे अपने साथ लिए जाता हूँ।"

अपनी बीवी से भी मैंने कहा-

"आप बिल्कुल बीमार नहीं, कम से कम ऐसी बीमार नहीं जैसा यहाँ लोग आपको बताना चाहते हैं, ये सब आपके माँ-बाबा की चाल है, ये बात कुछ आपसे छिपी हुई नहीं है, आप मेरे साथ चल कर रहिए तब पता चलेगा कि आपको क्या बीमारी है।"

पहले तो मेरी यह साफ़ बात उसकी कुछ समझ में नहीं आई मगर थोड़ी बहुत बहस के बाद वो मेरे साथ चलने पर राज़ी हो गई।

हम दोनों ने एक लंबा सफ़र किया, और दूर पहाड़ों पर

जा कर रहने लगे बर्फ़िस्तान की सूखी और ताज़ा हवा में दूर दूर टहलने के लिए निकल जाते।

जब थोड़े दिनों बाद मेरी बीवी की सेहत ठीक हो गई तो मैं उसे लेकर घर आया। मेरे दोस्तों और रिश्तेदारों ने जब हमें देखा तो मेरे लिए ये बड़े गर्व का मौक़ा था। मगर उनके दिलों में शक बाक़ी रह गया वो पूरे सबूत के लिए किसी और चीज़ के इच्छुक थे। लेकिन मुझे अपनी कामयाबी का पूरा यक़ीन था। एक महीने के बाद दूसरा महीना आहिस्ता-आहिस्ता गुजरता जाता था और मेरी बीवी का पेट बढ़ता जाता था।

मेरी हालत उस माली की सी थी जो अपने लगाए हुए पोधों पर कलियों को खिलते हुए देखकर बाग़ बाग़ होता है। हर हर दिन, हर हर लम्हा के बाद मेरी कामयाबी ज़्यादा नुमायाँ होती जाती। लेकिन मेरी बीवी ख़ामोश रहती। मैं समझता था कि इसका कारण गर्भ की घबराहट और परेशानी है। आख़िरकार उसको दर्दे शुरू हुआ। घंटों तक दर्द और बेचैनी रही। जिस्म तकलीफ से तड़प रहा था और किसी भी तरह उसे चैन नहीं था। रूह तक मालूम होता था कि दर्द से चीख़ रही है। लेकिन उसकी बेचैनी और तड़प, उसकी आह और पुकार, इन सबसे मेरी जवाँ-मर्दी का सबूत मिल रहा था।

म`आज़-अल्लाह[1] ! मेरे कानों में अभी तक उस का दर्दनाक कराहना गूंज रहा है। और इसके बाद चारों तरफ़ जो ख़ामोशी छा गई और जिसने मेरी अकड़ और शान को मिट्टी में मिला दिया, वो समय भी अभी तक मेरी आँखों के सामने है। लेकिन उसके मरने के बाद जब लोग मुझसे ये कहने आए कि मरते वक़्त उसके लबों पर मुस्कुराहट थी तो मेरे दिल को कुछ सुकून हो गया।

---

[1] अरबी भाषा का एक वाक्य जिसका अर्थ है-'अल्लाह क्षमा करे'। जब कोई अनुचित बात कहते हैं तो उस समय बोला जाता है।